दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 6

अध्यात्म-पद

(राग मल्हार)

ज्ञान सरोवर सोई हो भविजन ।टेक ॥
भूमि छिमा करुना मरजादा, सम-रस जल जहँ होई ॥भवि०
परहति लहर हरख जलचर बहु, नय-पंकति परकारी
सम्यक् कमल अष्टदल गुण हैं, सुमन भँवर अधिकारी ॥भवि०
संजम शील आदि पल्लव हैं, कमला सुमति निवासी ।
सुजस सुवास कमल परिचय तैं, परसत भ्रम तप नासी ॥भवि०
भव मल जात न्हात भविजनका, होत परम सुख साता ।
'द्यानत' यह सर और न जानैं, जानैं बिरला ज्ञाता ॥भवि०

चारित्र
ज्ञान
दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (318) एक अंक 25 पैसा [आश्विन : 2497

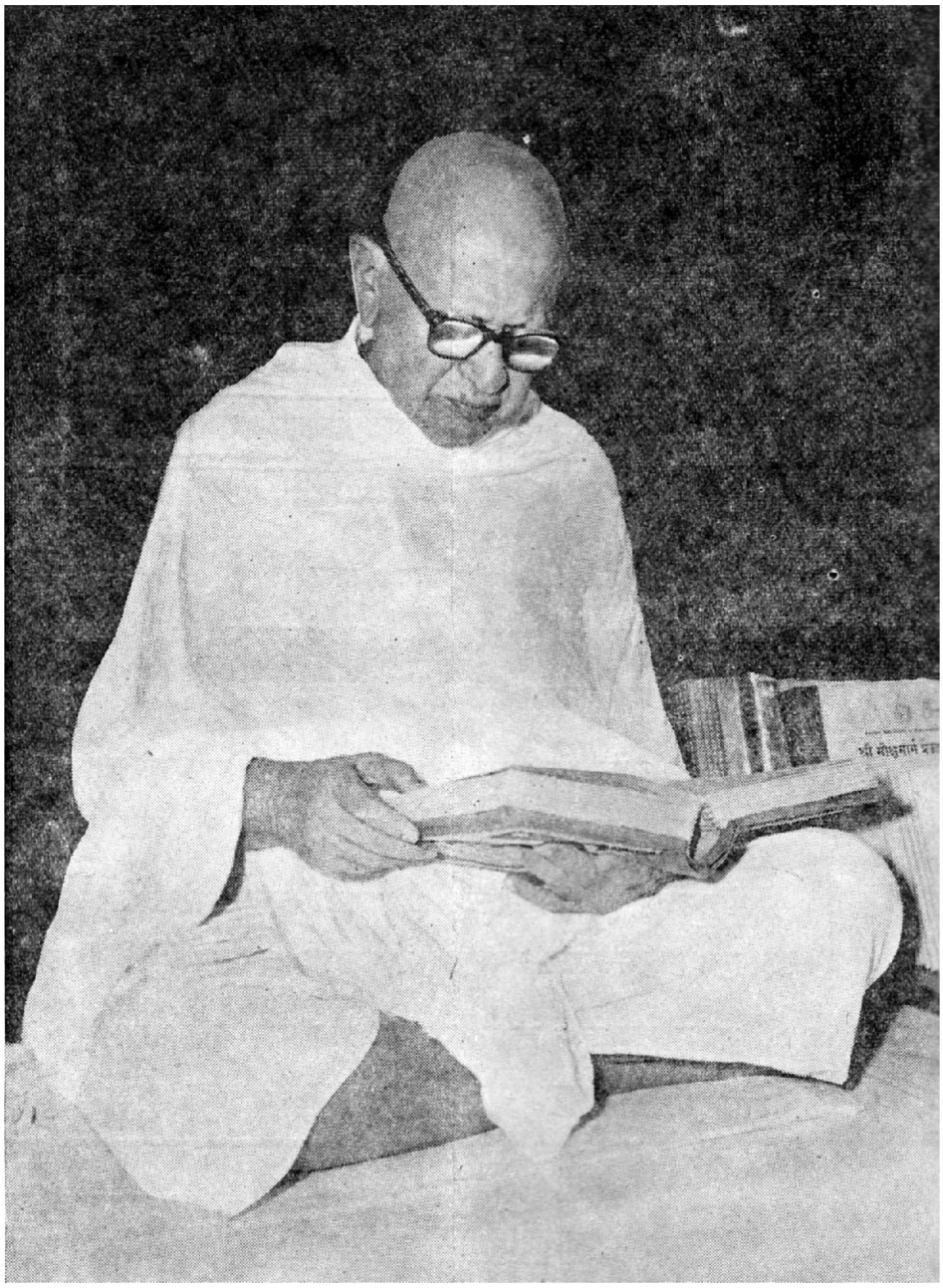

स्वाध्याय-मग्न : पूज्य श्री कानजीस्वामी

(फोटो : जयपुर : ज्येष्ठ शुक्ला 5, संवत् 2497)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अक्टूबर : 1971 ☆ आश्विन : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 6

अपनी चैतन्यवस्तु मुझे सतत सुलभ है

मुमुक्षु को स्वानुभूतिप्रेरक ऐसा एक सुंदर न्याय पूज्य स्वामीजी अत्यंत भावपूर्वक बारंबार कहते हैं कि—चैतन्यवस्तु धर्मी जीव को सतत सुलभ है; क्योंकि अंतर में सत् है; उसका जहाँ स्वीकार किया, वहाँ वह सुलभ है। 'ऐसा ही मैं हूँ'—इसप्रकार स्वयं अपने को जानकर शुद्ध आत्मा को श्रद्धा में लिया, वहाँ वह अपने को सतत सुलभ है, स्वयं अपने को सदा प्रत्यक्ष है। कोई नवीन वस्तु नहीं बनाना है; परंतु स्वयं सत् जैसा है, वैसा स्वीकार करना है, इसलिये वह सदा सुलभ है, सदा प्राप्त है। अज्ञानी श्रद्धा नहीं करता, इसलिये उसे स्ववस्तु का दर्शन नहीं होता; सत् अपने में होने पर भी उसे देखता नहीं है, इसलिये उसे दुर्लभ लगता है। ज्ञानी तो जानते हैं कि—अहा! मेरी चैतन्यवस्तु सदा मेरे पास ही है, इसलिये मुझे सदा सुलभ है—प्राप्त है। हे जीव! अपने में सदा प्राप्त ऐसी अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु का स्वीकार करके तू भी उसे सुलभ बना।

सर्व अपराधों के अभावरूप शुद्ध प्रायश्चित्त

[स्वात्मा के चिंतन द्वारा ज्ञान की विशेष उज्ज्वलता ही प्रायश्चित्त है।]

(श्री नियमसार के निश्चय-प्रायश्चित्त-अधिकार पर पूज्यश्री कानजीस्वामी का प्रवचन)

(आश्विन कृष्णा 3-4)

शुद्ध आत्मा की भावना द्वारा प्रायश्चित्त होता है। शुद्धात्मा के सन्मुख होकर उसके भान से पुण्य-पापरूप कलुषता का नाश होता है और ज्ञान की विशुद्धिरूप उज्ज्वलता प्रगट होती है, इसलिये शुद्धात्मा की भावना ही उत्तम प्रायश्चित्त है।

जिस भाव से आत्मा को दुःख हुआ, अशुद्धता हुई, अपराध हुआ, उस मलिनभाव का नाश होकर जिससे चित्त की विशेष शुद्धि हो, वही सच्चा प्रायश्चित्त है। शुद्धस्वभाव की भावनारूप निर्मल परिणाम ही प्रायश्चित्त है।

शुद्ध आत्मा द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म रहित है; ऐसे आत्मा को जानकर उसमें एकाग्रतारूप वीतरागपरिणाम, वह निश्चय से महाव्रत है। महाव्रत, समिति, प्रायश्चित्त, सामायिक, आलोचना आदि सबका समावेश ध्यान में ही होता है। शुद्ध आत्मा का ध्यान ही निश्चय से महाव्रतरूप चारित्र है, शुद्ध आत्मा का ध्यान ही सामायिक है, शुद्ध आत्मा का ध्यान ही प्रायश्चित्त है, शुद्ध आत्मा का ध्यान ही परम अहिंसा है। शुद्ध आत्मा के आश्रय से निश्चय धर्मध्यान होने पर सर्व परभाव छूट जाते हैं, इसलिये ध्यान में ही सर्व धर्म समा जाते हैं। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि:—

आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु सर्वभावपरिहारम्।
शक्नोति कर्तु जीवस्तस्माद् ध्यानं भवेत् सर्वम्॥119॥

परभाव के अवलंबन में तो शुभाशुभभावरूप अपराध की उत्पत्ति है; इसलिये परालंबीभाव द्वारा रागादि दोष का नाश नहीं होता। रागादि सर्व दोषों का नाश और निश्चय महाव्रतादि वीतरागी भावों की उत्पत्ति शुद्ध स्वद्रव्य के अवलंबन से ही होती है; इसलिये

शुद्धात्मा का अवलंबन लेनेवाली जो विशेष परिणति है, वह प्रायश्चित्त है, वह संवर है, उसमें इन्द्रिय का निरोध है।

अतीन्द्रिय ऐसे आत्मा का इन्द्रियातीत परिणमन, सो संयम है। उस विशुद्ध परिणति में रागादि हिंसाभाव का अभाव है, इसलिये वह अहिंसा है; उसमें अपने सत्स्वभाव की स्वीकृति होने से वही यथार्थ सत्य है। उसमें एक रजकणमात्र परद्रव्य का या परभाव का ग्रहण नहीं है, इसलिये वही सच्चा अदत्त है; उसी में परमब्रह्मस्वरूप में रमणता होने से और पर के संसर्ग का बिलकुल अभाव होने से वही परमार्थ ब्रह्मचर्य है; उसमें स्वद्रव्य का ही परिग्रहण है, सर्वप्रकार से स्वयं अपने स्वभाव को ही ग्रहण किया है, इसके अतिरिक्त अन्य के ग्रहण का अभाव है; इसलिये वही अपरिग्रह महाव्रत है।—इसप्रकार शुद्ध अंतर्मुख परिणति में पाँच महाव्रतों का समावेश होता है; समिति आदि सब भी उसी में आ जाते हैं। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि—अहो, अंतर्मुख होकर चैतन्य के आकाररूप परिणाम हुए उसमें सब आ जाता है। पश्चात् उसमें 'यह करूँ और यह छोड़ूँ'—ऐसे विधि-निषेध के विकल्प करना नहीं रहता। संकल्प-विकल्प तो असमाधि हैं, बहिर्मुखभाव हैं और समाधि तो अंतर्मुख-आकार है अर्थात् चैतन्य में तद्रूप परिणमन है; वही ज्ञान की उज्ज्वलतारूप प्रायश्चित्त है और ऐसा प्रायश्चित्त मुमुक्षु जीव का निरंतर कर्तव्य है।

शुद्धात्मा से बहिर्मुख जितने भाव हैं, वे अग्निसमान आकुलतावान होने से अपराध हैं; उनका जिसके द्वारा नाश हो और शांत-अनाकुल विशुद्ध चैतन्यभाव प्रगट हो, वह प्रायश्चित्त है; उसमें अपने शुद्ध आत्मा का ही अवलंबन है।

अहा, आत्मा तो मात्र अतीन्द्रिय आनंद की डली है... उसे खोलने से जो अतीन्द्रिय आनंदमय परिणति प्रगट होती है, वह धर्म है, वह प्रायश्चित्त है। अतीन्द्रिय आनंद ही जिसका रूप है, उसमें प्रवेश करके उसका अवलोकन करना, वह निश्चय से ईर्यासमिति है। ज्ञानभावरूप परिणति हुई, उसमें सर्व अपराध का अभाव है; इसलिये वही सच्चा प्रायश्चित्त है। इस प्रायश्चित्त में खेद नहीं है, इसमें तो अतीन्द्रिय आनंद की मस्ती है, अकेले शांतरस में समाधि है।

अहो, स्वात्मचिंतन में तत्पर मुनियों को निरंतर प्रायश्चित्त है। जिसने अतीन्द्रिय आनंद

में परिणति को लीन किया, उसके बाह्य में पाँच इन्द्रियों का विस्तार अटक गया, परिणति अतीन्द्रिय होकर अंतर्मुखाकार हुई... वह जीव वीतराग भगवान की पेढ़ी में बैठ गया।

जो वीतराग की पेढ़ी का नाम रखकर राग के व्यापार से लाभ मनवाये, वह वीतराग का विरोधी है; राग के व्यापार से लाभ मानना, वह तो धर्म का दिवाला निकालने का व्यापार है। भाई! तुझे वीतराग की पेढ़ी का उत्तराधिकार लेना हो तो सर्व राग के अभावरूप जो शुद्ध चैतन्य परमतत्त्व—ऐसे आत्मा को पहिचानकर उसका चिंतन कर! स्वात्मा के चिंतन से वीतरागभाव की उत्पत्ति हुई, वही वीतराग का मार्ग है। ऐसे वीतरागमार्ग की आराधना द्वारा ही भव का पार पाया जाता है और मोक्ष के परम सुख का अनुभव होता है।

स्वात्मा के ध्यान द्वारा तत्क्षण सर्व पापों को त्यागकर मुनि मुक्तिसुख प्राप्त करते हैं। अपने अचिंत्य परमगुणों से परिपूर्ण परमात्मा को अंतर में भाना अर्थात् अनुभवन करना, वह दोष के अभावरूप प्रायश्चित्त है, उसमें परभाव से रहित ऐसे उज्ज्वल ज्ञान का प्रकाशन है।

मेरा आत्मा शुद्धज्ञान है, शुद्धज्ञान में क्रोधादि कोई दोष कभी है ही नहीं—इसप्रकार अपने शुद्धज्ञान का जिसे स्वीकार है अर्थात् अनुभव है, उसे सदा प्रायश्चित्त ही है। शुद्धज्ञान, वह आत्मा का उत्कृष्ट धर्म है; उसमें शांति-आनंद-प्रभुता आदि अनंत धर्मों का समावेश हो जाता है। मैं स्वयं ऐसे शुद्धज्ञान की मूर्ति हूँ—इसप्रकार ज्ञान की सम्यक्भावना भानेवाले जीव को प्रायश्चित्त है ही, अर्थात् उसे ज्ञान की उत्कृष्ट शुद्धि होती ही है। अहो! ऐसे गुणवंत मुनिवरों को मैं भी वैसे गुणों की प्राप्ति हेतु वंदन करता हूँ।

वाह, शुद्धज्ञानस्वरूप आत्मा की सम्यक्भावना अर्थात् उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभूतिरूप परिणति, वही परमधर्मी जीवों का प्रायश्चित्त (उत्कृष्ट ज्ञान) है, उसमें सर्व दोषों का अभाव है, और उसमें अनंत गुणों का समावेश हो जाता है। प्राय:चित्तस्वरूप अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप जो अपना परम शुद्ध आत्मा, उसकी भावना करनेवाला जीव स्वयं भी प्रायश्चित्तस्वरूप है। त्रैकालिक आत्मा उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप होने के कारण वह निश्चय से प्रायश्चित्तस्वरूप ही है और ऐसे शुद्धस्वभाव के सन्मुख होकर जो पर्याय में उसकी सम्यक् भावना भाता है, उस जीव को भी प्रायश्चित्त है। परिणति में प्रायश्चित्तस्वरूप त्रैकालिक शुद्ध ज्ञानस्वभाव को जिसने धारण किया है, उस आत्मा को सदा प्रायश्चित्त ही है।

क्षणिक रागादि अपराधभावों को धर्मी अपने श्रद्धा-ज्ञान में धारण नहीं करते, उन्हें तो भिन्न ही रखते हैं; धर्मी तो निर्दोष परमचित्त को—उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप आत्मा को ही अपने श्रद्धा-ज्ञान में धारण करते हैं। मैं भी ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी सम्यक्भावना करता हुआ, शुद्धात्मज्ञान के सम्यक्भावनावंत मुनीन्द्र को वंदन करता हूँ।

स्वरूपसाधना में एक का ही अवलंबन है

निज स्वरूप की साधना अपने स्वभाव के ही अवलंबन से होती है, उसमें दूसरे किसी का भी अवलंबन काम नहीं आता। इसलिये हे भव्य! समस्त परद्रव्यों से निरालंबी होकर अपने स्व-द्रव्य का एक का ही अवलंबन ले। पर के अवलंबन से स्वरूप की साधना नहीं होती; स्व के ही अवलंबन से स्वरूप की साधना होती है।

सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक की शुद्धता स्वानुभूति द्वारा प्रगट होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग स्वानुभूति में आ जाता है। संत और शास्त्र स्वानुभूति प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। जो शास्त्र की ओर ही देखता है और आत्मा की ओर झुककर स्वानुभूति नहीं करता, उसने शास्त्र की आज्ञा को नहीं माना। जिसने स्वानुभव किया, उसने सभी शास्त्रों का रहस्य जान लिया।—इसप्रकार स्वानुभूति में सभी शास्त्रों का रहस्य आ जाता है।

आत्मा को अपूर्व शांति तथा समाधि देनेवाला

अलौकिक वीतरागमार्ग

सर्वज्ञदेव का मार्ग अपूर्व अलौकिक है; उस मार्ग का सेवन करने से आत्मा में परम वीतराग शांति है। जिसमें शांति न मिले, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव से परम अतीन्द्रिय शांति देनेवाला है। अरे जीव! वीतराग का ऐसा मार्ग तुझे मिला है, तो अब अन्य उपाधि छोड़कर वीतरागभाव से अपने परमात्मतत्त्व का चिंतवन कर, उसमें तुझे परम शांति, परम आनंद और परम समाधि होगी।

[श्री नियमसार गाथा 122 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

समाधि अर्थात् आत्मा की सच्चा शांति और आनंद किसप्रकार होता है, उसकी यह बात है। आधि-व्याधि और उपाधि रहित जो वीतरागी शांतभाव, वह समाधि है। इस समाधि में बाह्य का कोई अवलंबन नहीं किंतु अपने शुद्ध आत्मा का ही आलंबन है। वीतरागभाव द्वारा अपने आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करना, वह समाधि की विधि है।

मुमुक्षु धर्मी को पंच परमेष्ठी भगवान के प्रति बहुमान-स्तुति का प्रशस्तभाव आता है; परंतु परम समाधि में तो उस प्रशस्तराग का भी अवलंबन नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहंत और सिद्ध भगवंतों को अचिंत्य परम वीतराग-वैभव प्रगट हुआ है तथा साधु-मुनियों को भी आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदन द्वारा अत्यंत आनंदमय वीतराग वैभव प्रगट हुआ है। अशुभ से छूटने के लिये मुमुक्षु जीवों को परमयोगी-मुनियों को भी ऐसे परमेष्ठी भगवंतों की स्तुति, बहुमान कर्तव्य है; उसमें प्रशस्तभाव है। तथा परमार्थ समाधि में लीन ऐसे निर्विकल्प संतों को तो अतीन्द्रिय आनंद में ऐसी एकाग्रता है कि प्रशस्त व अप्रशस्त किसी रागवृत्ति का उत्थान ही नहीं होता; वे तो परम वीतरागभाव से अपने ज्ञायकस्वरूप का ही ध्यान करते हैं।

भगवान आत्मा तो त्रिकाल कर्मकलंक से रहित है तथा उसके सन्मुख होनेवाली पर्याय भी कर्मकलंक से रहित है। शुभविकल्प का विषय आत्मा नहीं है, आत्मा तो रागरहित

वीतरागी चेतना का ही विषय है। राग तो आस्रवतत्त्व है, वह कहीं जीवतत्त्व नहीं; स्वभावसन्मुख हुई चेतना भी रागादि आस्रव से रहित होकर संवर-निर्जरारूप हुई है। अरे, संसार के रस में रमनेवाले जीवों को इस चैतन्यतत्त्व के रस का स्वाद कहाँ से आयेगा? चैतन्य का रस जिसे प्रगट हुआ हो, उसे संसार में अन्य किसी का रस नहीं रहता है। चैतन्य की ओर जो भाव उन्मुख हुआ, वह भाव राग से मुक्त हो गया, इसलिये वह पर्याय आस्रवरहित हुई—ऐसी अंतर्मुख पर्याय ही समाधि है, उसमें किसी परभाव की उपाधि नहीं है। जीवन जीते-जीते ही धर्मात्मा को आत्मा की ऐसी समाधि का अनुभव होता है।

सर्वज्ञदेव का मार्ग अपूर्व अलौकिक है, उस मार्ग का सेवन करने पर आत्मा को परम वीतरागी शांति होती है। जिसमें शांति न मिले, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव द्वारा परम अतीन्द्रिय शांति देनेवाला है। अरे जीव! वीतराग का ऐसा मार्ग तुझे मिला, तो अब अन्य उपाधि छोड़कर वीतरागभाव से अपने परमतत्त्व का चिंतवन कर, उसमें तुझे परम शांति, परम आनंद और परम समाधि होगी।

अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर समुद्र तेरा आत्मा, उसके आनंदरस का रसिया होकर उसी को अंतर में वीतरागभावरूप ध्यान का विषय बना। इसके अतिरिक्त अन्य किसी के आश्रय से शांति का वेदन नहीं होता है। सम्यग्दर्शन करने के लिये भी प्रथम अपने शुद्ध आत्मा को ही ध्येय बनाकर लक्ष्य में ले। सम्यग्दर्शन में भी कोई अपूर्व समाधि है। सम्यग्दर्शन भी पुण्य और पाप दोनों से रहित है, तथा आत्मा के आश्रय से ही उसकी उत्पत्ति है।

अरे, ऐसा अलौकिक वीतरागमार्ग, आत्मा के अपने स्वभाव का मार्ग! उसे हे जीव! तू स्वानुभवगम्य कर। वह स्वानुभव से ही गम्य है। स्वानुभव के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से आत्मा का स्वभाव हाथ में नहीं आता, तथा स्वघर में निवास नहीं होता। स्वभाव के स्वघर में प्रवेश करके पर्याय उसमें निवास करे, वही अपूर्व आनंदमय वास्तु-प्रवेश है। श्री वीतरागभाव से आत्मा में निवास करते हैं, उनको भगवान निजगृहवासी कहते हैं।

—००—००—

अरे जीव! तू देह में सुख मानकर और देह की प्रतिकूलता में दुःख मानकर सो रहा है—परंतु सुन! तेरा तत्त्व देह से भिन्न है, तेरा सुख-दुःख देह में नहीं है। देह से तू अत्यंत भिन्न है।

चैतन्य की स्वानुभूति में ही मेरी शोभा है

[भाद्रपद शुक्ला 15, श्री नियमसार श्लोक-173 से 179]

जिसप्रकार सुंदर स्त्रियों के कटाक्षबाण द्वारा भी मुनियों के हृदय विचलित नहीं होते, उसीप्रकार संकल्प-विकल्प के द्वारा चैतन्यतत्त्व विचलित नहीं होता; धर्मी जीव अपने चैतन्यतत्त्व को समस्त संकल्प-विकल्प से पृथक् ही जानता है। हे जीव! ऐसे शांत-सुंदर अपने तत्त्व को भूलकर तू परभाव के कोलाहल में कहाँ रुका हुआ है?

जिसप्रकार बड़े पुरुषों की उपस्थिति में बालक ऊधम करे तो माता उसे डाँटती है कि—अरे बेटा! यह तुझे क्या हुआ है? ऐसे महान पुरुष सामने बैठे हैं और तू ऐसा ऊधम करता है, यह क्या तुझे शोभा देता है? उसीप्रकार जो राग से लाभ मनाते हैं, ऐसे जीवों को जिनवाणी माता उलहना देती है कि—अरे जीव! महान परमात्मा अंतर में साक्षात् तेरे निकट विराजमान है और उसकी उपस्थिति में तू राग से लाभ मानकर परभाव के उत्पाद करता है—यह क्या तुझे शोभा देता है? नहीं; तेरी शोभा तो राग से रहित चैतन्य की स्वानुभूति द्वारा ही है।

मुमुक्षु जीव अपने निर्विकल्प शुद्धतत्त्व को बराबर जानते हैं; तीन लोक को जानने का जिसका स्वभाव है, तथा कहीं भी एक विकल्प करने का जिसका स्वभाव नहीं है—ऐसे शुद्ध निर्विकल्प तत्त्व मैं ही हूँ—ऐसा स्वानुभव से अत्यंत स्पष्ट मुमुक्षु जीव जानते हैं। इसप्रकार स्वतत्त्व को जानकर शुद्धोपयोग से उसमें एकाग्रतारूप शुद्धशील के आचरण द्वारा वह मुमुक्षु जीव सिद्धि को प्राप्त होता है।

देखो, स्वतत्त्व कैसा है? तथा वह कैसे जाना जाता है? अर्थात् वह अनुभव में कैसे आता है, उसकी यह बात है। अपनी ज्ञानपर्याय से अपना आत्मा ज्ञात होता है। जब ज्ञानपर्याय को स्वभावसन्मुख एकाग्र करने पर ज्ञानमय पूर्ण वस्तु जानने में आयी, तब उसने आत्मा का अनुभव किया। ऐसे आत्मा को जानकर उसमें एकाग्र होने पर शुद्ध शील का आचरण होता है। पर से भिन्न अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप एक संपूर्ण चैतन्यवस्तु है; उसमें द्रव्य-गुण को भूलकर जो मात्र पर्याय जितना ही अपने को अनुभव करे, उस जीव को (प्रवचनसार की गाथा 93 में) पर्यायमूढ़—मिथ्यादृष्टि कहा है। शुद्धपर्याय के भेद करके उसके विकल्प में रुक जाये, तो भी उसे विकल्प के साथ एकता होने से उसको शुद्धपर्याय प्रगट नहीं होती। शुद्धपर्याय तो

तभी होती है कि जब द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का भी आश्रय छोड़कर एक अभेद शुद्धआत्मा का अवलंबन लेकर उस अभेद का अनुभव करे।

मुनि तथा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा आनंदसहित अपने अंतर में ऐसे निर्बाध तत्त्व का अनुभव करते हैं। उस निर्बाध चैतन्यतत्त्व का किसी के द्वारा छेदन नहीं होता। जिसप्रकार सुंदर स्त्रियों के कटाक्षबाण से भी मुनियों के हृदय छिदते नहीं हैं, उसीप्रकार संकल्प-विकल्प से चैतन्यतत्त्व का भेदन नहीं होता, धर्मी अपने चैतन्यतत्त्व को समस्त संकल्प-विकल्प से पृथक् ही रखता है। अरे जीव! ऐसे अपने शांत-सुंदर तत्त्व को भूलकर तू परभाव के कोलाहल में कहाँ अटका हुआ है?

जिसप्रकार महान् पुरुषों की उपस्थिति में बालक ऊधम करे तो माता उसे डाँटती है कि—अरे बेटा! यह तुझे क्या हुआ? ऐसे महान् पुरुष सामने बैठे हैं और तू ऐसा ऊधम करता है, यह क्या तुझे शोभा देता है! उसीप्रकार राग से जो लाभ मनाते हैं, ऐसे जीवों को जिनवाणी माता उलहना देती है कि—अरे जीव! महान् परमात्मा अंतर में साक्षात् तेरे निकट विराजमान है और उसकी उपस्थिति में तू राग से लाभ मानकर परभाव के उत्पात करता है—यह क्या तुझे शोभा देता है? नहीं, तेरी शोभा तो राग से रहित चैतन्य की स्वानुभूति द्वारा ही है। अरे, 'तू राग कर, तुझे राग से लाभ होगा'—ऐसे राग का उपदेश क्या मुनि या धर्मी को शोभा देता है? नहीं। वीतरागता के साधक जीव तो वीतरागता से ही लाभ मनाते हैं, वीतरागता का ही उपदेश देते हैं, तथा उसी का आदर करते हैं; वीतरागभाव से ही उनकी शोभा है।

वीतरागी गुरु तो वीतरागमार्ग का ही उपदेश देते हैं। जो राग की पुष्टि का उपदेश देते हैं उन्हें वीतरागमार्गी कौन कहेगा? जो मिथ्यामार्ग का उपदेश दें, 'तू यह नया पाप कर'—ऐसा पाप का उपदेश दें, वे तो वीतरागमार्ग से विरुद्ध हैं। धर्मी तो कहते हैं कि हमारा तत्त्व राग से अत्यंत भिन्नरूप जयवंत है। अहो, उस तत्त्व की महिमा की क्या बात!

देखो तो सही! मुनि तो सिद्धों के साथ बातें करते हैं। प्रभो! आपके जैसा मेरा स्वभाव मैंने अपने में अनुभव किया है—इसलिये मैं आपके समीप ही हूँ। आपसे किंचित् भी दूर नहीं।

अहो, ऐसा सच्चिदानंदतत्त्व अचिंत्य महिमावंत, स्वयं ही है, उसकी प्राप्ति के लिये किसी अन्य की महिमा की आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी अपने ऐसे शुद्धतत्त्व का ही अनुभव करता है। अहो, मेरा आत्मा ही कल्याण की मूर्ति है। उसे दृष्टि में लिया है, इसलिए मेरा

कल्याण ही है; प्रत्यक्षस्वभावी आत्मा पर्याय में भी स्वानुभवप्रत्यक्ष हुआ है; अहा! ऐसा प्रत्यक्ष अंश जिसमें से आया है, वह परिपूर्ण वस्तु प्रत्यक्षस्वभावी ही है, इसप्रकार स्वसंवेदनप्रत्यक्ष के बल से धर्मी अपने प्रत्यक्षस्वभावी आत्मा को निःशंक जानता है। वह जाननेवाले ज्ञान तो मति-श्रुत हैं, तथापि उन ज्ञान में इन्द्रिय-मन का या राग का अवलंबन नहीं है। अतीन्द्रियस्वभावी चेतनवस्तु है, उसका अवलंबन करने से पर्याय भी वैसी अतीन्द्रिय हो गयी है। ऐसे आत्मा का स्वसंवेदन होने पर धर्मी जानता है कि आनंद का और ज्ञान का धाम मैं ही हूँ। ज्ञान का मंदिर, आनंद का मंदिर मैं ही हूँ, मुझसे बाह्य अन्य कहीं मेरा ज्ञान-आनंद नहीं है।—इसप्रकार स्वसन्मुख अनुभूति करनेवाले धर्मात्मा को अपना आत्मा सुलभ ही है, दुर्लभ नहीं है, दूर नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जानता है कि—मेरा आत्मा उत्कृष्ट समता का घर है। तीन लोक में कोलाहल हो, तथापि जो अपनी समता से नहीं चले, ऐसा मेरा आत्मा है; परभावों के प्रपंच से वह दूर है, परंतु मेरे स्वभाव में वह मुझे निरंतर सुलभ है। मेरा शुद्धतत्त्व मुझमें सदा प्राप्त ही है, सदा मुझे सुलभ ही है, मैं अपने में सदा प्राप्त ही हूँ। मेरा तत्त्व मुझसे दूर नहीं। मन-वाणी से दूर है, परंतु स्वानुभव से वह मुझमें सुलभ है।—ऐसा जो अपना शुद्धतत्त्व है, वह नमन करनेयोग्य है, उसमें अंतर्मुख होकर एकाग्र होने जैसा है। हम उसी को नमस्कार करते हैं।

अहो, आत्मा तो शांतरस का समुद्र है, जहाँ केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा का चंद्र सोलह कलाओं से उदित हुआ, वहाँ शांतरस का समुद्र उछला। यह केवलज्ञानचंद्र सदा सोलह कलाओं से विकसित हुआ है, उसके साथ परम शांतरस प्रगट होता है, वैसा ही मेरे आत्मा का स्वभाव है—ऐसा है जीव! तू अपने स्वभाव का विश्वास कर! तेरे आत्मा का संकल्प-विकल्प करने का स्वभाव नहीं, केवल अनाकुल शांतरस ही तेरे में भरा हुआ है,—ऐसे स्वरूप में दृष्टि करने से शांतरस का समुद्र अपने में उल्लसित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है... अनंत शांति का अपने आत्मा में वेदन होता है; अपनी परिणति द्वारा अपने शांतरसमय भगवान का मैं स्वागत करता हूँ।

'परद्रव्य का मैं कुछ कर सकता हूँ'—ऐसा परद्रव्य का कर्तापना स्वयं महा अहंकाररूप अज्ञानांधकार है और वह अनादि से चला आ रहा है। आत्मा के आश्रय बिना उस महा अहंकार का अभाव नहीं होता।

चारित्र में बहती है आनंद की धारा

[नियमसार-टीका श्लोक 186-187-188]

मेरा मार्ग और वीतराग परमात्मा का मार्ग किंचित्मात्र भिन्न नहीं है

आत्मा ज्ञानमूर्ति है, उसके सन्मुख होकर उसका जो रागरहित अतीन्द्रियवेदन होता है, वह आनंद है, वह धर्म है; उसमें आत्मा की उपलब्धि है।

कर्मरहित और अनंत आनंदसहित जो ज्ञानमूर्ति आत्मा, उसकी अनुभूति में आनंद की तरंगें उठती हैं। आत्म-अनुभूति में तो शांतरस की तीव्र जलधारा सतत गिरती है तथा भव का दावानल बुझ जाता है। ऐसी दशावाले जीव को संयम और चारित्र होता है।

शुभविकल्प कहीं चारित्र व ज्ञान नहीं हैं, उसमें कहीं आनंद की धारा नहीं है, तथा वह कहीं वीतरागमार्ग नहीं है; अंतर में आत्मा की उपलब्धि से प्राप्त हुआ जो ज्ञान और चारित्र, उसमें आनंद की धारा उल्लसित होती है, वही वीतरागमार्ग है। भाई! तेरा मार्ग और वीतरागमार्ग किंचित्मात्र पृथक् नहीं है। यदि पृथक्त्व भासित हो तो वह सच्चा मार्ग नहीं है।

राग की जाति भिन्न है, ज्ञान की जाति भिन्न है; दोनों की भिन्नता का अनुभव करके ज्ञान में जो एकाग्रता हुई, वह चारित्र है, उसमें आनंद की धारा प्रगट होती है, वह वीतराग का साक्षात् मार्ग है।

राग में तो भव का दावानल है; वह अशुभ हो या शुभ, उसमें चैतन्य की शांति किंचित्मात्र नहीं है। वह दावानल ज्ञानजल द्वारा ही बुझाया जाता है। अंतर में परिपूर्ण शांतरस का समुद्र आत्मा, उसको सम्यग्ज्ञान द्वारा प्राप्त करके अनुभव में लेने पर शांतरस की जोरदार धारा गिरने से भव के दावानल को बुझा देती है। स्वानुभूति में धर्मी को कोई अलौकिक शांति है।

चैतन्यसूर्य में से जो ज्ञान की किरणें प्रगट होती हैं, वे अज्ञान-अंधकार को दूर करती हैं; वहाँ स्वभाव-सन्मुख एकाग्रता से शीघ्र ही शांतरस की धारा उल्लसित होती है। परिणति परभावों से छूटकर इतनी शीघ्रता से अंतरोन्मुख हुई कि शांतरस की जोरदार वर्षा हुई, और अनादि के परभाव की आकुलता को नष्ट कर दिया।—ऐसी ज्ञानी की दशा है। तथा ऐसे ज्ञानी के आत्मा के चारित्र में आनंद की धारा बहती है। ज्ञानी के चारित्र की अद्भुत आनंदधारा को

अज्ञानी कैसे पहिचान सकेगा ? अंतर में जाकर राग से रहित ज्ञान का स्वयं अनुभव करे, तभी उसका पता लग सकता है। अज्ञान में रहकर जीव चाहे जितना करे, तथापि उसे शांति व आनंद का अनुभव नहीं होता। सम्यग्ज्ञानी ने ज्ञान और राग की भिन्नतारूप भेदज्ञान की चाबी द्वारा आत्मा के भंडार का ताला खोल लिया है, वह अपने आनंद को अपने में देखता है।

अहा, चैतन्य का ऐसा आनंद! तथा उसे बतलानेवाली वीतराग की वाणी! उसको सुनने के लिये महान पात्रता चाहिए। सिंहनी के दूध जैसी वीतराग की वाणी, तथा वीतराग के भाव, उनको झेलने के लिए वीतराग परिणतिरूप सोने का पात्र चाहिए; वह रागरूप लोहे के पात्र में नहीं रहता। राग की रुचिवाला जीव, वीतराग की वाणी को सहन नहीं कर सकता, उसकी परिणति में आनंदरस की धारा नहीं उतरती; चैतन्यस्वभाव में स्वसन्मुख होकर, राग से भिन्न हुई जो शुद्धज्ञानपरिणति, वही चैतन्य की आनंद धारा को झेलती है, वही वीतराग की वाणी को झेलती है।

अहो, समयसार-नियमसाररूपी यह अध्यात्मशास्त्र तो अमृत के सागर हैं—क्योंकि उनमें कहे हुए चैतन्यभाव को समझने पर सम्यग्ज्ञान में आनंद का समुद्र उल्लसित होता है... ऐसे चैतन्यसमुद्र में जो गोता लगाता है, उसी को संयमरूपी रत्नमाला प्राप्त होती है। भाई, अपने चैतन्यसमुद्र में एकबार दृष्टि तो कर! तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नमाला प्राप्त होगी... तथा तू मोक्ष का स्वामी होगा। देखो, ऐसी ज्ञानदशावाले जीव को ही आनंदमय चारित्रदशा होती है; दूसरों को उस चारित्र की खबर नहीं है।

चारित्रवंत मुनियों के चित्त में कौन निवास करता है ? उन चारित्रवंत मुनियों के चित्त में अपना परम आत्मतत्त्व ही निवास करता है; परमतत्त्व के अतिरिक्त कोई रागादि परभाव उनके चित्त में निवास नहीं करते। अहा! जिनकी ज्ञानपर्याय में परमात्मा निवास करते हैं, जिनकी ज्ञानपर्याय में संसार नहीं वर्तता—ऐसे मुनि को मोक्षसुख के कारणरूप चारित्र होता है। मुनियों के चित्त में जिसका निवास है, ऐसे इस परमतत्त्व को मैं सदा नमता हूँ.... अपनी ज्ञानपर्याय को अंतर्मुख करके, उसमें मैं अपने परमात्मा का अनुभव करता हूँ। अहो! मैंने अपनी ज्ञानपर्याय में अपने परमात्मा को बसाया है, राग का उसमें निवास नहीं है। राग को भिन्न जानकर परमात्मतत्त्व में अपनी ज्ञानपर्याय को एकाग्र करने से अपूर्व आनंद की धारा मुझमें बरसती है। ऐसी आनंदरस की उग्रधारा जहाँ बरसे, वहीं चारित्र होता है, और वह चारित्र मोक्षसुख का कारण है। इसलिए मैं—आत्मा अपनी पर्याय द्वारा अपने परमात्मतत्त्व को नमस्कार करता हूँ।

अहो, ज्ञानधर्म!

[अंतर्मुख होकर शुद्धात्मज्ञान की सम्यक्भावना ही कर्तव्य है।]

(श्री नियमसार, गाथा 116 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन)

धर्म अर्थात् आत्मा का नित्य ज्ञानगुणस्वभाव; उस स्वभाव की रागरहित निर्विकार परिणति, वह मोक्ष के साधनरूप धर्म है। आत्मा ने अपने ज्ञानधर्म को सदा अपने में धारण कर रखा है; ऐसे आत्मा की सम्यक्भावना द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म प्रगट होता है।

सर्वज्ञस्वभाव वह आत्मा का उत्कृष्ट धर्म है; त्रिकाल अनंत धर्म हैं, उनमें सर्वज्ञस्वभावरूप धर्म मुख्य है; उस सर्वज्ञस्वभाव के सन्मुख होकर प्रतीति करते ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

ज्ञानधर्म महान है-उत्कृष्ट है; ज्ञान में राग नहीं है; ज्ञान की अनुभूति राग से पार है। शुद्धज्ञान की अनुभूति में आत्मा आ जाता है। ज्ञान को आत्मा ही कहा है। ऐसे ज्ञानस्वभाव की सम्यक्भावना में चित्त की अत्यंत शुद्धि होने से उसे प्रायश्चित्त कहा जाता है; उसमें ज्ञान की अतिशयता है और रागादि दोषों का परिहार है।

शरीर-मन-वाणी को एक ओर रखो, वे तो पर ही हैं; अंतर में जो रागादि परभाव हैं, उन्हें भी ज्ञान से भिन्न ही जानो; ज्ञानधर्म में राग नहीं है। आत्मा ज्ञानधर्म जितना है, उसका उत्कृष्ट ज्ञानस्वभाव होने से वह स्वयं प्रायश्चित्त है। अहो, ऐसा ज्ञानधर्म आत्मा का अपना है; उसके द्वारा आत्मस्वरूप की पहिचान होती है।

धर्म को धारण करनेवाला आत्मा है, उसे जाने बिना धर्म नहीं होता। जाननेवाले को जाने बिना सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? जो ज्ञाता है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ऐसी स्वसत्ता को जानने से और उसमें लीन होने से मुक्ति के मार्गरूप शुद्धज्ञान प्रगट होता है, उस शुद्धज्ञान को निश्चय प्रायश्चित्त कहा जाता है; उसमें मिथ्यात्वादि सर्व-दोषों का अभाव है।

मुनि शुद्धात्मज्ञान की सम्यक्भावना करनेवाले हैं। अपने शुद्धज्ञानस्वरूप की

सम्यक्भावना कब होती है ?—कि उस स्वभाव के सन्मुख होने से उसकी सम्यक्भावना होती है। पर के, राग के या पर्यायभेद के सन्मुख रहकर शुद्धज्ञान की सम्यक्भावना नहीं होती; परंतु पर के पराङ्मुख; राग से रहित और पर्यायभेदों से पार होकर, अंतर सन्मुख अभेद परिणति द्वारा आत्मा की सम्यक्भावना होती है; वह सम्यक्भावना ही सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है; उसमें ध्येयरूप अपना शुद्धआत्मा ही है, अन्य कोई नहीं।

अहो, मेरा आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है; उसमें अतीन्द्रिय शांति है; अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव में अनंत धर्मों का समावेश है—ऐसे अपने ज्ञान की प्रतीति करने से अपना उत्कृष्ट सर्वज्ञस्वभाव स्वानुभव में मुझे प्रत्यक्षगोचर होता है; इसलिये सर्वज्ञपर्याय प्रगट करने के लिये कहीं बाह्य में-राग में देखना नहीं रहता; मेरा सर्वज्ञस्वभाव जो मुझमें सत् है ही—उसका स्वीकार करके उसकी सम्यक्भावना द्वारा उसमें से सर्वज्ञता आयेगी।—ऐसी धर्मी को प्रतीति है।

सर्वस्वभाव को स्वीकार करके जीव स्वयं सर्वज्ञता के मार्ग पर चलने लगा। रागवाला, इन्द्रियज्ञानवाला मैं हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाला जीव मिथ्याभाववाला है, क्योंकि वह अपने सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार नहीं करता। सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार करनेवाली परिणति तो राग से तथा इन्द्रियज्ञान से भिन्न हो जाती है और अतीन्द्रिय होकर अंतरस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करती है। इसलिये अंतर्मुख होकर शुद्धज्ञान की ऐसी सम्यक्भावना कर्तव्य है।

मुझे तो अपने आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ काम है, अन्य किसी के साथ मुझे काम नहीं है।—दूसरे जीव मानें, दूसरों को समझाना आये या न आये, दूसरी जानकारी हो या न हो, मुझे तो अपने में जो सर्वज्ञस्वभावरूप परमधर्म है, उसके साथ प्रयोजन है, इसलिये उसी के सन्मुख होकर मैं उस एक को ही सदा भाता हूँ.... बारंबार उसी का परिचय करता हूँ।

'अरे, पंचम काल में सर्वज्ञ भगवान का विरह हुआ!' परंतु कहीं अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का विरह है ? नहीं; जिसमें से सर्वज्ञता प्रगट होती है, ऐसा सर्वज्ञस्वभावी आत्मा तो प्रत्यक्ष-प्रगट अंतर में विराजमान है; अपना अपने को कभी विरह नहीं है।—ऐसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को जिसने पहिचाना, वह सर्वज्ञ के मार्ग में आ गया; अपने में ही भगवान की साक्षात् भेंट होने से सर्वज्ञ का विरह मिट गया... उसने भगवान को प्रसन्न कर लिया... वह स्वयं वीतरागमूर्ति हो गया। सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि समस्त भाव वीतरागता के ही प्रकार हैं, वे

कहीं राग के प्रकार नहीं हैं, इसलिये सम्यग्दर्शनादि सर्वधर्म वीतरागता की ही मूर्ति हैं, जिसे सम्यग्दर्शनादि हुए, वह वीतरागमूर्ति हुआ। आत्मा के ज्ञानधर्म की सम्यक्भावना द्वारा ऐसा धर्म होता है; इसलिये मुमुक्षु जीवों को अंतर्मुख होकर अपने शुद्धज्ञानमूर्ति आत्मा की सम्यक्भावना करनेयोग्य है। बारंबार, क्षण-क्षण परम महिमा लाकर अपने ज्ञानस्वभाव में परिणति लगाने योग्य है... वह सम्यक्भावना मुक्ति का कारण है।

शुद्धात्मा की ऐसी सम्यक् भावनावंत मुनियों को मैं आदरपूर्वक उनके गुणों की प्राप्ति हेतु वंदन करता हूँ, अर्थात् मैं भी रागादिभावों की भावना छोड़कर अपने शुद्धात्मा के सन्मुख होकर उसकी सम्यक् भावना भाता हूँ।

आस्रव और संवर

शुभाशुभ कर्मागमद्वाररूप आस्रवः।
आस्रव निरोधलक्षणः संवरः॥

सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि—

शुभ-अशुभकर्म जिससे आते हैं, वह आस्रव है। शुभराग द्वारा शुभकर्म का आगमन होता है, इसलिये वह आस्रव है, और वह बंध का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

आस्रव के निरोध को संवर कहा; यानी शुभकर्म का आस्रव भी जिससे रुकता है, वह संवर है, वह मोक्षमार्ग है। शुभकर्म का भी जिससे आस्रव हो, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

आस्रव की और संवर की ऐसी स्पष्ट व्याख्या समझे, तभी मोक्षमार्ग का सच्चा निर्णय होता है।

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

हृदय के फाटक खोलकर आत्मा का अनुभव करानेवाले यह प्रवचन सर्व जिज्ञासुओं को बहुत ही प्रिय लगे हैं... जिससे आत्मधर्म में यह लेखमाला चलती रहेगी... तदुपरांत समयसार-नाटक के प्रवचनों को पुस्तकरूप में प्रकाशित करने की भी योजना है।

* आत्मा के अनुभव द्वारा परम मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। अहो, ऐसे अनुभवरस का हे जीवो! तुम सेवन करो। आत्मा के अनुभव की और ऐसे स्वानुभवी संतों की जितनी महिमा करें, उतनी कम है। स्वयं ऐसा अनुभव करना ही सार है। ऐसा अनुभव करने की बात समयसार में कही है, इसलिये कहते हैं कि—'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'।

* आत्मा के अनुभव में अत्यंत पवित्रता है, इसलिये अनुभव ही परमार्थ तीर्थ है। सम्मेदशिखर, गिरनार, शत्रुंजय आदि सिद्धक्षेत्र तो शुभभाव के निमित्तरूप व्यवहार तीर्थ हैं; परंतु यहाँ तो कहते हैं कि मोक्ष के लिये तो ऐसा अनुभव ही सच्चा तीर्थ है। जिसने स्वानुभव किया, उसका आत्मा स्वयं पवित्र तीर्थ बन गया; क्योंकि वह भवसागर से तारता है। असंख्यप्रदेशी आत्मा स्वयं स्वानुभवरूप मोक्षसाधना की भूमि है, इसलिये वही तीर्थधाम है, उसकी यात्रा करने से मोक्ष प्राप्त होता है। शुभराग को परमार्थ से भी तीर्थ नहीं कहते, शुद्ध रत्नत्रयरूप अनुभव को ही तीर्थ कहते हैं—कि जिसके द्वारा निश्चित ही भवसमुद्र को पार किया जा सकता है।

* ऐसा अनुभव वर्तमान में हो सकता है?—तो कहते हैं कि हाँ, वर्तमान में भी गृहस्थ को शुद्धात्मा का अनुभव हो सकता है। अरे, अनुभव क्या वस्तु है! उसे न समझे, उसकी महिमा न जाने, वह अनुभव कब करेगा? और अनुभव के बिना मोक्षमार्ग का द्वार कहाँ

से खुलेगा ? अनुभवप्रकाश में तो कहते हैं कि तिर्यंच, नारकी और गृहस्थों को भी आत्मा का निर्विकल्प-अनुभव कभी-कभी होता है।

* धर्म के उत्तम फल पकने के लिये अनुभव, वह उपजाऊ भूमि है। जिसप्रकार उत्तम रसवाली भूमि में अच्छा अनाज पैदा होता है, उसीप्रकार स्वानुभव ही ऐसी उत्तम भूमि है कि जिसमें सम्यग्दर्शन पैदा होता है। धर्म की अच्छी फसल तैयार होने के लिये अनुभव ही उत्तम उपजाऊ भूमि है।

* आत्मा तो अतीन्द्रिय आनंद की दुधारू गाय है, जो कि प्रतिदिन तथा सादि-अनंतकाल तक आनंद का दूध दिया ही करती है, उसमें एकाग्र होने पर उसमें से तत्क्षण अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है।

* देखो, यह कवि ! सच्चे कवि तो ऐसे होते हैं जो आत्मा का गुणानुवाद करें; किंतु जिसने आत्मा को जाना होगा, वही उसके गुणगान करेगा। वाह, आत्मा की अद्‌भुत महिमा गायी है ! चैतन्य का सर्वोत्तम अध्यात्मरस इस समयसार में घोला है।

* आत्म-अनुभव प्रगट होने पर कर्म खिर जाता है। कर्मचेतना छूटकर परम पद के साथ प्रीति होती है। आत्मा का जो परमस्वभाव और उसका परमात्मपद, उसके साथ प्रीति अनुभव द्वारा ही जुड़ती है। अनुभव के समान अन्य कोई धर्म नहीं है। ऐसे अनुभवधर्म से साधकपना जयवंत है। स्वानुभव-धर्म के बिना साधकपना नहीं होता।

* लोग कहते हैं—'प्रेमधर्म की जय'! यहाँ तो कहते हैं कि—'अनुभवधर्म की जय हो'! पर का प्रेम अर्थात् राग तो संसार का कारण है, उसका नाश करने जैसा है। अरे जीवो ! आत्मा के परम स्वभाव का तो तुमने प्रेम नहीं किया तथा परभाव में प्रेम करके सुख माना-यह तो मूर्खता है। भाई ! अपने हित के लिये परभावों से प्रीति छुड़ाकर आत्मा में प्रीति जोड़ो, तथा उसका अनुभव करो। क्योंकि आत्मा का अनुभव ही मोक्ष का कारण है, इसलिये वही वीतरागमार्ग में जयवंत है। ऐसा आत्म-अनुभव करना ही वीतरागी शास्त्रों का तात्पर्य है।

* ऐसे महिमावंत आत्मा के अनुभव बिना किसी व्यवहार या राग को महिमा देने से तो आत्मा का अपमान होता है—इसकी अज्ञानी को खबर नहीं है। भाई ! दूसरों की

महिमा छोड़कर अपने परम महिमावंत आत्मा को जान।

* प्रत्येक द्रव्य अपनी अनंत पर्यायों सहित है। चेतनस्वरूप जीवद्रव्य भी अपनी अनंत गुण-पर्यायों सहित है—ऐसा आत्मा जैनशासन में सर्वज्ञभगवान ने देखा है तथा संतों ने उसका अनुभव करके आगम में कहा है। ऐसे जीवद्रव्य को पहिचानकर अंतर में रागरहित अनुभव करना ही धर्म है।

[क्रमशः]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथाएँ

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिये,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिये॥

(2) निःकांक्ष-अंग में प्रसिद्ध अनंतमती की कथा

[निःशंक अंग में प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा गतांक में आपने पढ़ी; अब दूसरे निकांक्ष अंग में प्रसिद्ध अनंतमती सती की कथा आप पढ़िये।]

अनंतमती! चंपापुर के प्रियदत्त सेठ उसके पिता, और अंगवती उसकी माता, वे दोनों जैनधर्म के परम भक्त और वैरागी धर्मात्मा थे, उनके उत्तम संस्कार अनंतमती को भी मिले थे।

अनंतमती अभी तो सात-आठ वर्श की बालिका थी और गुड़ियों का खेल खेलती थी; इतने में ही एकबार अष्टाह्निका पर्व में धर्मकीर्ति मुनिराज पधारे और सम्यग्दर्शन के आठ अंगों

का उपदेश दिया; उसमें निकांक्ष गुण का उपदेश देते हुए कहा कि—हे जीवो! संसार के सुख की वाँछा छोड़कर आत्मा के धर्म की आराधना करो, धर्म के फल में जो संसार-सुख की इच्छा करता है, वह मूर्ख है। सम्यक्त्व या व्रत के बदले में मुझे देवों की या राजाओं की विभूति मिले—ऐसी जो वाँछा करता है, वह तो संसार-सुख के बदले सम्यक्त्वादि धर्म को बेच देता है, छाछ के बदले में रत्न-चिंतामणि बेचनेवाले मूर्ख के समान है। अहा, अपने में ही चैतन्य-चिंतामणि जिसने देखा, वह बाह्य विषयों की वाँछा क्यों करे?

अनंतमती के माता-पिता भी मुनिराज का उपदेश सुनने के लिये आये थे और अनंतमती को साथ लाये थे। उपदेश के बाद उन्होंने आठ दिन का ब्रह्मचर्यव्रत लिया और हँसी में अनंतमती से कहा कि तू भी यह व्रत ले ले। निर्दोष अनंतमती ने कहा, अच्छा, मैं भी यह व्रत अंगीकार करती हूँ।

इस प्रसंग को अनेक वर्ष बीत गये; अनंतमती अब युवा हुई, उसका रूप सोलह-कलाओं सहित खिल उठा, रूप के साथ धर्म के संस्कार भी खिलते गये।

एकबार सखियों के साथ वह उद्यान में घूमने-फिरने गई थी और एक झूले पर झूल रही थी; इतने में उधर से एक विद्याधर राजा निकला और अनंतमती का अद्भुत रूप देखकर मोहित हो गया, और विमान में उसे उड़ा ले गया—परंतु इतने में ही उसकी रानी आ पहुँची; इसलिये भयभीत होकर उस विद्याधर ने अनंतमती को एक भयंकर वन में छोड़ दिया। इसप्रकार दैवयोग से एक दुष्ट राजा के पंजे से उसकी रक्षा हुई।

अब घोर वन में पड़ी हुई अनंतमती पंचपरमेष्ठी का स्मरण करने लगी और भयभीत होकर रुदन पूर्वक कहने लगी कि अरे! इस जंगल में मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? यहाँ कोई मनुष्य तो दिखाई नहीं देता...

इतने में उस जंगल का राजा भील शिकार करने निकला, उसने अनंतमती को देखा... अरे! यह तो कोई वनदेवी है या कौन है? ऐसी अद्भुत सुंदरी दैवयोग से मुझे मिली है—इसप्रकार वह दुष्ट भील भी उस पर मोहित हो गया और उसे अपने घर ले गया और कहा—हे देवी! मैं तुम पर मुग्ध हुआ हूँ और तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहता हूँ... तुम मेरी इच्छा पूरी करो।

निर्दोष अनंतमती तो उस पापी की बात सुनते ही फुसक-फुसककर रोने लगी... अरे! मैं शीलव्रत की धारक... और मेरे ऊपर यह क्या हो रहा है? अवश्य ही पूर्वजन्म में किसी गुणीजन के शील पर मैंने दोषारोपण या उनका अनादर किया होगा; उसी दुष्टकर्म के कारण आज जहाँ जाती हूँ, वहीं मेरे ऊपर ऐसी विपत्ति आ पड़ती है। परंतु अब वीतराग धर्म का मैंने शरण लिया है, उसके प्रताप से मैं शीलव्रत से डिग नहीं सकती। अंत में देव भी मेरे शील की रक्षा करेंगे। भले प्राण जावें किंतु मैं शील को नहीं छोडूँगी।

उसने भील से कहा : 'अरे दुष्ट! अपनी दुर्बुद्धि को छोड़! तेरे धन-वैभव से मैं कभी ललचानेवाली नहीं। तेरे धन-वैभव को धिक्कारती हूँ!'

अनंतमती की ऐसी दृढ़ बात सुनकर भील राजा क्रोधित हो गया और निर्दयतापूर्वक उस पर बलात्कार करने को तैयार हो गया....

इतने में ऐसा लगा कि मानो आकाश फट गया हो और एक महादेवी वहाँ प्रगट हुई... उसका दैवी तेज वह दुष्ट भील सहन न कर सको, और उसके होश-हवास उड़ गये... वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा। देवी ने कहा—यह महान शीलव्रती सती है, इसे जरा भी सतायेगा तो तेरी मौत हो जावेगी। और अनंतमती पर हाथ फेरकर कहा—बेटी! धन्य है तेरे शील को; तू निर्भय रहना! शीलवान सती का बाल वाँका करने में कोई समर्थ नहीं है। ऐसा कहकर वह देवी अदृश्य हो गई।

भयभीत होकर वह भील अनंतमती को लेकर नगर में एक सेठ के हाथ बेच आया। उस सेठ ने पहले तो यह कहा कि मैं अनंतमती को उसके घर पहुँचा दूँगा—परंतु वह भी उसका रूप देखकर कामान्ध हो गया और कहने लगा—हे देवी! अपने हृदय में तू मुझे स्थान दे... और मेरे इस अपार धन-वैभव को भोग।

उस पापी की बात सुनकर अनंतमती स्तब्ध रह गई... अरे! फिर यह क्या हुआ? वह समझाने लगी कि हे सेठ! आप तो मेरे पिता तुल्य हो। दुष्ट भील के पास से आने के बाद तो मैंने समझा था कि मेरा पिता मिल गया... और आप मुझे मेरे घर पहुँचा दोगे। अरे! आप भले आदमी होकर ऐसी नीच बात क्यों करते हैं? यह आपको शोभा नहीं देता-अतः ऐसी पापबुद्धि छोड़ो!

बहुत समझाने पर भी दुष्ट सेठ नहीं समझा, तब अनंतमती ने विचार किया कि इस दुष्ट का हृदय विनय-प्रार्थना से नहीं पिघलेगा... इसलिये क्रोध-दृष्टिपूर्वक उस सती ने कहा कि, अरे दुष्ट! कामान्ध! तू दूर जा... मैं तेरा मुख भी नहीं देखना चाहती।

उसका क्रोध देखकर सेठ भी भयभीत हो गया और उसकी अक्ल ठिकाने आ गई। क्रोधपूर्वक उसने अनंतमती को कामसेना नाम की एक वेश्या को सौंप दिया।

अरे, कहाँ उत्तम संस्कारवाले माता-पिता का घर! और कहाँ यह वेश्या का घर! अनंतमती की अंतर-वेदना का पार नहीं था; परंतु अपने शीलव्रत में वह अडिग थी। संसार का वैभव देखकर उसका मन तनिक भी ललचाया नहीं था।

ऐसी सुंदरी को प्राप्त करके कामसेना वेश्या अत्यंत प्रसन्न हुई और मुझे बहुत कमाई होगी—ऐसा समझकर वह अनंतमती को भ्रष्ट करने का प्रयत्न करने लगी। उससे अनेक प्रकार के कामोत्तेजक वार्तालाप किए, बहुत लालच दिये, बहुत डर भी दिखाया, परंतु फिर भी अनंतमती अपने शीलव्रत से रंचमात्र भी डिगी नहीं। कामसेना को तो ऐसी आशा थी कि इस युवा स्त्री का व्यापार करके मैं विपुल धन कमाऊँगी, परंतु उसकी आशा पर पानी फिर गया। उस बेचारी विषय-लोलुप वेश्या को क्या पता कि इस युवा-स्त्री ने तो अपना जीवन ही धर्मार्थ अर्पण कर दिया है और संसार के विषय-भोगों की उसके अणुमात्र भी आकांक्षा नहीं है। संसार के भोगों के प्रति उसका चित्त एकदम निष्कांक्ष है। शील की रक्षा करते हुए चाहे जितना दुःख आ पड़े किंतु उसे उसका भय नहीं है। अहा! जिसका चित्त निष्कांक्ष है, वह भय से भी संसार के सुखों की इच्छा कैसे करे? जिसने अपने आत्मा में ही परम सुख का निधान देखा है, वह धर्मात्मा, धर्म के फल में संसार के-देवादिक वैभव के सुख स्वप्न में भी नहीं चाहता—ऐसा निष्कांक्ष है; वैसे ही अनंतमती ने भी शीलगुण की दृढ़ता के कारण संसार के सर्व वैभवों की आकांक्षा छोड़ दी; किसी भी वैभव में ललचाये बिना वह शील में अडिग रही। अहा! स्वभाव के सुख के सामने संसार का सुख कौन चाहै? वास्तव में संसार के सुख की वाँछा से छूटकर निष्कांक्षित हुई अनंतमती की यह दशा ऐसा सूचित करती है कि उसके परिणामों का प्रवाह अब स्वभावसुख की ओर झुक रहा है। ऐसे धर्मसन्मुख जीव संसार के दुःख से कभी डरते नहीं हैं और अपना धर्म कभी छोड़ते नहीं हैं। संसार के सुख का वाँछक

जीव अपने धर्म में अडिग नहीं रह सकता। दु:ख से डरकर वह धर्म को भी छोड़ देता है।

जब कामसेना ने जाना कि अनंतमती किसी भी प्रकार से वश में नहीं आयेगी, तो उसने बहुत सा धन लेकर सिंहराज नामक राजा को सौंप दिया।

बेचारी अनंतमती!—मानों सिंह के जबड़े में जा पड़ी! उसके ऊपर पुनः एक नई मुसीबत आई और दुष्ट सिंहराजा भी उसके ऊपर मोहित हो गया, परंतु अनंतमती ने उसका तिरस्कार किया। विषयांध हुआ वह पापी अभिमानपूर्वक सती पर बलात्कार करने को तैयार हो गया—किंतु क्षण में उसका अभिमान चूर हो गया।—सती के पुण्य-प्रताप से (नहीं, शीलप्रताप से) वनदेवी वहाँ आ गई और दुष्ट राजा को शिक्षा देते हुए कहा कि, खबरदार... भूलकर भी इस सती को हाथ लगाना नहीं! सिंहराजा तो देवी को देखते ही शृंगाल जैसा हो गया, उसका हृदय भय से काँप उठा; उसने क्षमा माँगी; और तुरंत ही सेवक को बुलाकर अनंतमती को मान सहित जंगल में छोड़ आने के लिए आज्ञा दे दी।

अब अनजान जंगल में कहाँ जाना चाहिये? इसका अनंतमती को कुछ पता नहीं था; इतने-इतने उपद्रवों में भी अपने शीलधर्म की रक्षा हुई ऐसे संतोषपूर्वक घोर जंगल के बीच पंचपरमेष्ठी का स्मरण करती हुई वह आगे बढ़ी। उसके महाभाग्य से थोड़ी ही देर में आर्यिकाओं का एक संघ दिखाई पड़ा, वह अत्यंत आनंदपूर्वक आर्यिका माता की शरण में गई। अहा! विषयलोलुप संसार में जिसको कहीं शरण न मिली, उसने वीतरागमार्गी साध्वी की शरण ली; उसके आश्रय में पहुँचकर अश्रुपूर्ण आँखों से उसने अपनी वीती कथा कही; वह सुनकर भगवती आर्यिका माता ने वैराग्यपूर्वक उसे आश्वासन दिया और उसके शील की प्रशंसा की। भगवती माता की शरण में रहकर वह अनंतमती शांतिपूर्वक अपनी आत्मसाधना करने लगी।

❖❖❖

अब इस तरफ चंपापुरी में जब विद्याधर अनंतमती को उड़ाकर ले गया, तब उसके माता-पिता बेहद दु:खी हुए। पुत्री के वियोग से खेदखिन्न होकर चित्त को शांत करने के लिये वे तीर्थयात्रा करने निकले; और यात्रा करते-करते तीर्थंकर भगवंतों की जन्मपुरी अयोध्यानगरी में आ पहुँचे। प्रियदत्त के साले (अनंतमती के मामा) जिनदत्त सेठ यहीं रहते थे; वहाँ आते ही

आँगन में एक सुंदर रंगोली (चौक) देखकर प्रियदत्त सेठ की आँखों में से आँसुओं की धार बह निकली; अपनी प्रिय पुत्री की याद करके उन्होंने कहा कि मेरी पुत्री अनंतमती भी ऐसी ही रंगोली पूरती थी; अतः जिसने यह रंगोली पूरी हो, उसके पास मुझे ले जाओ। वह रंगोली पूरनेवाला कोई दूसरा नहीं था, अपितु अनंतमती स्वयं ही थी; अपने मामा के यहाँ जब वह भोजन करने आई थी, तभी उसने यह रंगोली पूरी थी, फिर बाद में वह आर्यिका संघ में चली गई थी। तुरंत ही सभी लोग संघ में पहुँचे। अपनी पुत्री को देखकर और उसके ऊपर बीती हुई कथा सुनकर सेठ गद्‌गद् हो गये, और कहा—'बेटी! तूने बहुत कष्ट भोगे, अब हमारे साथ घर चल... तेरे विवाह की तैयारी करेंगे।'

विवाह का नाम सुनते ही अनंतमती चौंक उठी और बोली; पिताजी! आप यह क्या कहते हैं? मैंने तो ब्रह्मचर्यव्रत लिया है और आप भी यह बात जानते हैं। आपने ही मुझे यह व्रत दिलाया था।

पिताजी ने कहा : 'बेटी, यह तो तेरे बचपन की हँसी की बात थी। फिर भी यदि तुम उस प्रतिज्ञा को सत्य ही मानती हो तो भी वह तो मात्र आठ दिन की प्रतिज्ञा थी; इसलिये अब तुम विवाह करो।

अनंतमती ने दृढ़ता से कहा : 'पिताजी! आप भले ही आठ दिवस की प्रतिज्ञा समझे हों, परंतु मैंने तो मन से आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा धारण की थी। मैं अपनी प्रतिज्ञा प्राणांत होने पर भी नहीं छोड़ूँगी। अतः आप विवाह का नाम न लेवें।

अंत में पिताजी ने कहा : 'अच्छा बेटी, जैसी तेरी इच्छा! परंतु अभी तू मेरे साथ घर चल, और वहीं धर्मध्यान करना।'

तब अनंतमती कहती है—'पिताजी! इस संसार की लीला मैंने देख ली, संसार में भोग-लालसा के अतिरिक्त दूसरा क्या है? इससे तो अब बस होओ! पिताजी! इस संसार संबंधी किसी भोग की मुझे आकाँक्षा नहीं है। मैं तो अब दीक्षा लेकर आर्यिका होऊँगी और इन धर्मात्मा-आर्यिकाओं के साथ रहकर अपने आत्मिक सुख को साधूँगी।'

पिता ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु जिसके रोम-रोम में वैराग्य छा गया हो, वह इस असार संसार में क्यों रहे? सांसारिक सुखों को स्वप्न में भी न चाहनेवाली

अनंतमती नि:कांक्षित भावना के दृढ़ संस्कार के बल से मोहबंधन को तोड़कर वीतरागधर्म की साधना में तत्पर हुई। उसने पद्मश्री अर्जिका के समीप दीक्षा अंगीकार कर ली और धर्मध्यानपूर्वक समाधिमरण करके स्त्री-पर्याय को छेदकर बारहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

खेल-खेल में लिए हुए शीलव्रत का जिसने दृढ़तापूर्वक पालन किया और स्वप्न में भी सांसारिक सुख की इच्छा नहीं की, तथा सम्यक्त्व अथवा शील के प्रभाव से कोई ऋद्धि आदि मुझे प्राप्त हो—ऐसी आकाँक्षा भी जिसने नहीं की, वह अनंतमती देवलोक में गई; अहा! देवलोक के आश्चर्यकारी वैभव की क्या बात! किंतु परम निष्कांक्षिता के कारण उससे भी उदास रहकर वह अनंतमती अपने आत्महित को साध रही है। धन्य है उसकी नि:कांक्षिता को!

[—यह कथा, सांसारिक सुख की वाँछा छोड़कर, आत्मिक सुख की साधना में तत्पर होने के लिए हमें प्रेरणा—शिक्षा देती है।]

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा में से

मुनिधर्म के दस भेद

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य—ये मुनिधर्म के दस भेद हैं ॥70॥

यदि क्रोध की उत्पत्ति का साक्षात् बहिरंग कारण हो, फिर भी किंचित् भी क्रोध नहीं करता [त्रैकालिक सर्वज्ञस्वभाव को समीप रखकर ज्ञाता ही रहता है] उसके क्षमाधर्म होता है ॥71॥

जो मुनि कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत तथा शील के विषय में कुछ भी गर्व नहीं करते, [नित्य ज्ञानचेतना में सावधान रहता है] उसके मार्दवधर्म होता है ॥72॥

जो मुनि कुटिलभाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है [अपने त्रैकालिक

अकषाय आर्यस्वभाव—ज्ञ-स्वभाव में सरलता सहित रहता है।] उसके नियम से आर्जवधर्म होता है ॥73॥

दूसरों को संताप करनेवाले वचन को छोड़कर जो भिक्षु स्व-पर हितकारी वचन बोलता है, उसके [परिणामों की निर्मलता के कारण] सत्यधर्म होता है ॥74॥

जो मुनि उत्कृष्टतया कांक्षाभाव से निवृत्ति कर वैराग्यभाव से युक्त (नित्य निःकांक्षभाव से अवस्थित) रहता है, उसके शौचधर्म होता है ॥75॥

मन-वचन-काय की प्रवृत्तिरूप दंड को त्यागकर तथा इंद्रियों को जीतकर [नित्यज्ञायक स्वभावभाव के बल द्वारा] जो व्रत और समितियों के पालनरूप चेष्टा करता है—[आत्मव्यवहार-वीतराग परिणति सहित है] उसके नियम से संयमधर्म होता है ॥76॥

विषय-कषाय के विनिग्रहरूप भाव को [वीतरागी निजपरिणाम को] उत्पन्न करके जो ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की भावना करता है, उसके नियम से तपधर्म होता है ॥77॥

[त्रैकालिक निर्मोह ज्ञानस्वभाव में ही एकत्व के बल द्वारा] जो समस्त द्रव्यों के विषय में मोह का त्याग कर तीन प्रकार के निर्वेद की भावना करता है, उसके त्यागधर्म होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥78॥

जो मुनि तनःसंग-निष्परिग्रही होकर सुख-दुःख देनेवाले अपने भावों का निग्रह करता हुआ [नित्य चिदानंदपूर्ण स्वरूप में संतुष्ट-तृप्त रहता हुआ] निर्द्वन्द रहता है अर्थात् [स्वरूप में ही विश्रांति द्वारा] किसी इष्ट-अनिष्ट के विकल्प में नहीं पड़ता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है ॥79॥

जो स्त्रियों के सब अंग दीख पड़ें—तो उन्हें देखता हुआ भी उनमें खोटे भाव को छोड़ता है अर्थात् किसी प्रकार के विकारभाव को प्राप्त नहीं होता, निज परमात्मतत्त्व में आनंदसहित लीन होता है, वह निश्चय से अत्यंत कठिन ब्रह्मचर्यधर्म को धारण करने के लिये समर्थ होता है, उसको उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म होता है ॥80॥

—ooo—

आत्मज्ञान ही आनंद-मंगलरूप है

[पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

आत्मा सत्-चैतन्य आनंदमय शाश्वत वस्तु है। ऐसे आत्मस्वभाव के सन्मुख होकर शरीरादिक तथा रागादिक विभावों से विमुख होना, सो मांगलिक है। अनादि काल में जो प्राप्त नहीं हुई, ऐसी अपूर्व आत्मशांति जिससे प्राप्त हो, वह मंगल है। अंतर में आत्मा पवित्रस्वभावी भगवान है, उसके समीप जाने से सुख की प्राप्ति होती है, वह मंगल है। लौकिकजनों में पुत्रजन्म, विवाह, लक्ष्मी की प्राप्ति इत्यादि मंगल कहलाते हैं, किंतु यह कहीं वास्तविक मंगल नहीं है। वास्तविक मंगल तो भगवान आत्मा के स्वभाव में निवास करके अविनाशी सुख की प्राप्ति हो, ममकाररूप पाप गले, वह सच्चा मंगल है; ऐसे जीव को अंतर के आनंद-समुद्र में से शांति का स्रोत प्रवाहित होता है। ऐसा मंगल जीव ने कभी नहीं किया। आत्मज्ञान के बिना अनंतबार त्यागी होकर मुनिव्रत पालन किया, किंतु उस शुभ से धर्म मानकर आकुलता का ही वेदन किया, आकुलता से रहित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा है, उसका वेदन नहीं किया; उसकी पहिचान भी नहीं की। आत्मा स्वयं आनंदस्वरूप है, उसके ज्ञान से आनंद की प्राप्ति होती है, यही मंगल है। आठ वर्ष का बालक भी आत्मा का ज्ञान करके ऐसा मंगल प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है।

आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है ? उसे पहिचानकर अनुभव करना, सो धर्म है, वही मोक्षमार्ग है। जितने व्यवहार के विकल्प हैं, वह अभूतार्थ हैं; गुण-गुणी भेद के विकल्परूप व्यवहार, वह भी भूतार्थ आत्मा नहीं है, उसके द्वारा आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता। शुभराग, वह आत्मा के चेतनस्वभाव में असद्भूत है। केवल राग की ही ओर झुका हुआ ज्ञान वह सच्चा ज्ञान नहीं है। अकेला चिदानंदस्वभाव राग से पार है, ऐसे स्वभाव के आश्रय से ही सम्यक् श्रद्धा होती है। जातिस्मरण या दुःख का वेदन इत्यादि कारणों से सम्यक्त्व होना बतलाना, यह व्यवहार है, वास्तव में तो जब अंतर में एकरूप आत्मा का अवलंबन लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब अन्य सभी कारणों को व्यवहार कारण कहा जाता है; इसके अतिरिक्त केवल व्यवहार कारणों से किसी को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

यहाँ पर्याय को गौण किया है; किंतु वह आत्मा में है ही नहीं—ऐसा नहीं है; सर्वथा

पर्याय न हो तो एकांत वेदांत जैसा हो जायेगा। पर्याय है, किंतु शुद्धात्मा के वेदन में—अनुभव में पर्याय का भेद नहीं। व्यवहार को छोड़ने का अर्थ पर्याय का त्याग कर देना—ऐसा नहीं, किंतु अभेद स्वभाव का आश्रय करके भेद का आश्रय छोड़ना, वह सम्यग्दर्शन है, उसमें आत्मा के आनंद का स्वाद आता है।

सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आत्मा का मुख्य गुण है। जिसप्रकार अग्नि में पाचक, प्रकाशक तथा दाहक—ऐसी तीन शक्तियाँ हैं; पाचकशक्ति अनाज को पकाती है, प्रकाशकशक्ति प्रकाश प्रदान करती है तथा दाहकशक्ति लकड़ी इत्यादि को जलाती है; इसीप्रकार आत्मा की श्रद्धाशक्ति संपूर्ण शुद्धआत्मा को भूतार्थदृष्टि में पचाती है अर्थात् स्वीकार करती है; प्रकाशकशक्ति ऐसी ज्ञानशक्ति है कि वह स्व-पर को प्रकाशित करती है; तथा दाहकरूप चारित्रशक्ति आठ कर्मों को तथा रागादि परभावों को जलाकर नष्ट करती है।—ऐसे स्वभाववाला आत्मा है। ऐसे आत्मा को शुद्धनय के द्वारा पहिचाने तो सम्यग्दर्शन होता है।

जन्म-मरण से जिसको बाहर निकलना हो, उसके लिये यह बात है। जिसका हृदय व्यवहार में ही मोहित है, वह अपने एकरूप शुद्धात्मा को नहीं देखकर अनेकरूप ऐसे रागादि परभावों को ही देखता है; ऐसे जीवों को आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता तथा वे जन्म-मरण से भी नहीं छूटते। अंतर में दृष्टि करके आत्मा के सच्चे स्वभाव को देखे तो सातवें नरक का नारकी भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। ऐसे सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए असंख्यात जीव वहाँ हैं। ऐसे आत्मा की श्रद्धा नहीं करनेवाला तो भगवान के समवसरण में भी बैठा हो तो भी वह जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता तथा मिथ्यादृष्टि ही रहता है। बाहर के संयोग क्या कर सकते हैं? अंतर के भूतार्थ स्वभाव को नहीं पकड़े और परभावों को पकड़े तो वह जीव अभूतार्थ ऐसे व्यवहार में ही मग्न है। एक क्षण भी व्यवहार का पक्ष त्यागकर अंतर में राग से पार चिदानंदस्वभाव को पकड़े तो सम्यग्दर्शन होकर जन्म-मरण का अंत आ सकता है।

चारगति के दु:खों से छूटकर आनंदधामवाले निजनगर में प्रवेश करने का यह अवसर है; उसमें हे जीव! तू प्रमादी मत हो।

आत्मा स्वयं शाश्वत-चैतन्य-ज्ञानस्वरूप है; उसको भूलकर शरीर को, रागादिक परभावों को अपना मानना, यह अविद्या है तथा निजभाव की पहिचान करना, वह सम्यक् विद्या है, ऐसी आत्मविद्या-आत्मज्ञान, वह मोक्ष का कारण है और वही आनंद-मंगलरूप है।

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

[गतांक से आगे]

चेतनस्वरूप जो अनूप है अनादि ही कौ, निश्चयै निहारि एकता ही कौ चहतु है;
स्व-पर विवेक कला पाई नित पावन है, आत्मिक भवन में स्थिर ही रहतु है;
अचल अखंड अविनाशी सुखराशी महा, उपादेय जानि चिदानंद कौं गहतु है;
कहै 'दीपचंद' वही आनंद अपार लहि, भवसिंधुपार शिवद्वीप कौं लहतु है ॥8॥

चेतन को अंक एक सदा निकलंक महा, करम कलंक जामैं कोऊ नहीं पाइए;
निराकाररूप जो अनूप उपयोग जिसे, ज्ञेय लखैं ज्ञेयाकार न्यारो हू बताइये;
वीरज अनंत सदा सुख को समुद्र आप, परम अनंत उनमें और गुण गाइये;
ऐसो भगवान-ज्ञानवान लखै घर ही में, ऐसो भाव भाय 'दीप' अमर कहाइये ॥9॥

व्यवहारनय के धरैया व्यवहारनय, प्रथम अवस्था जामैं करालंब कह्यो है;
चिदानंद देखै व्यवहार झूठ भासतु है, आतमीक अनुभव स्वभाव जहाँ लह्या है;
देव चिदरूप की अनूप अवलोकनि में, कोऊ विकल्प भाव भेद नहिं रह्यो है;
चेतनस्वभाव सुधारसपान होय जहाँ, अजर अमरपद तहाँ लहलह्यो है ॥10॥

ज्ञान उर होत ज्ञाता उपादेय आप मानै, जानै पर न्यारौ जिसे कहला है विवेक की;
करम कलंक पंक डंक नहीं लागै कोउ, देव निकलंक रुचि भई निज एक की;
निर्भय अखंडित अबाधित स्वरूप पायौ, उसी से तो मेरी भ्रम भावना अनेक की;
देव हिय बीच वसै शाश्वतो निरंजन है, वही धन्य 'दीप' जिसे रीति सुध टेक की ॥11॥

मेरो ज्ञानज्योति को उद्योत मुझे भासतु है, उससे परज्ञेय को स्वभाव त्याग दियो है;
एक निराकार निरलेप जो अखंडित है, ज्ञायकस्वभाव ज्ञानमाहिं ग्रह लियो है;
जिनके प्रभुत्व में उठ गए हैं विभावभाव, आतम लखा वही सें आप पद चीनौ है;
ऐसे ज्ञानवान के प्रमान ज्ञानभाव आयौ, करनो न रह्या कछु कारिज नवीनौ है ॥12॥

मेरो है अनूप चिद्रूप रूप मुझमें ही, जिसै लखै मिटै चिर महा भवबाधना;
जिसके दर्शाव में विभाव सब विलाय जाय, जिसकी रुचि कीए सधे अलख अराधना;
जिसकी प्रतीति रीति प्रीति से मिली है इससे, त्यागी जगजाल जितनी सकल उपाधना;
अगम अपार सुखदाई सब संतनकौं, ऐसी 'दीप' साधै ज्ञानी सत्यज्ञान साधना ॥13॥

आप अवलोके बिना कुछ नहीं सिद्ध होत, कौटिक कलेशों की करो बहुत करणी;
क्रिया पर किए परभावों की प्राप्ति होत, मोक्षपंथ सधै नहीं बन्धही की धरणी;
ज्ञान उपयोगमैं अखंड चिदानंद जिसकी, सत्य ज्ञान भावना है मोक्ष अनुसरणी;
अगम अपार गुणधारी कौ स्वभाव साधै, 'दीप' संत जीवों की दशा है भवतरणी ॥14॥

आत्मा की शुद्धभावना

अचल अखंड ज्ञानज्योति है सरूप जाकौ,
चेतननिधान जो अनंत गुणधारी है।
उपयोग आतमीक अतुल अबाधित है,
देखिए अनादि सिद्ध निहचै निहारी है।
आनंद सहित कृतकृत्यता उद्योत होइ,
जाही समै ब्रह्मदृष्टि देत जो संभारी है।
महिमा अपार सुखसिंधु ऐसी घट ही मैं,
देव भगवान लखि 'दीप' सुखकारी है॥

आत्मस्वरूप का उपदेश

[पूज्य स्वामीजी का एक सरल-सुंदर प्रवचन]

यह समयसार सिद्धांतशास्त्र है, इसकी 68वीं गाथा में पूर्ण आत्मा की बात है। धर्मी अपने कैसे आत्मा का अनुभव करता है, उसका यह वर्णन है। अपने शुद्धआत्मा को पहिचाने बिना अनादि काल से जीव संसार में भ्रमण कर रहा है। संसार में मनुष्यभव मिलना अत्यंत दुर्लभ है; मनुष्यभव प्राप्त करके भी आर्यपना प्राप्त होना और उसमें भी आत्मा के कल्याण की सत्य बात सुनने को मिलना तो अत्यंत दुर्लभ है।

आत्मा शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप है; वह स्वयं ही है। जिसप्रकार किसी की मुट्ठी में सुवर्ण हो किंतु भूल से बाहर खोजता हो, किंतु स्मृति होते ही स्वर्ण स्वयं के हाथ में है, यह देखकर आनंदित होता है। इसीप्रकार आत्मा का अनुभव होते ही मुमुक्षु जीव कहता है कि अरे! मैं स्वयं ही चैतन्य परमेश्वर हूँ, ज्ञान-आनंदस्वरूप परम ऐश्वर्यवान तो मेरा आत्मा ही है, किंतु अपना स्वरूप मैं भूल गया था, उसे वीतरागमार्गी गुरुजनों ने मेरे अपने में बतलाया है। अहा, मेरा परम भाग्य है कि मुझे गुरु प्राप्त हुए और ऐसा आत्मस्वरूप समझने को मिला! श्रीगुरु ने क्या समझाया? कि तेरा आत्मा ही अपना परमेश्वर है, ज्ञान-दर्शन-सुखस्वभाव तुझमें ही भरा है—आत्मा का ऐसा स्वरूप निरंतर समझाया। गुरु तो निरंतर न कहकर अमुक समय ही उपदेश देते हैं—किंतु समझने की रुचि से शिष्य आत्मा के उपदेश का उल्लासपूर्वक 'निरंतर मंथन' करता है। इसप्रकार स्वयं समझने के लिये निरंतर पुरुषार्थ है, इसलिये निमित्तरूप श्रीगुरु निरंतर समझाते हैं, ऐसा कहा गया है। देखो यह आत्मा को समझने का उपाय! ऐसा ज्ञान करनेयोग्य है।

जीव स्वयं को भूल गया, यही अपना दोष है और अपने दोष से ही इसको बंधन है। अपना दोष समझकर आत्मा की पहिचान के द्वारा उसे दूर करना चाहिये। आत्मा का ज्ञान स्वयं करे, तब होता है। जिसप्रकार जिसको भूख लगी हो, वह स्वयं भोजन करे, तब तृप्ति होती है, किंतु दूसरा भोजन करे, उससे कहीं इसका पेट नहीं भरेगा; इसीप्रकार जिसको आत्मा को

समझने की भूख लगी हो तो वह अंतर की रुचिपूर्वक आत्मा का ज्ञान करे तो होता है; किंतु अन्य ज्ञानी के सन्मुख देखा करे एवं अपने में अंतर्मुख न हो तो सच्चा ज्ञान नहीं होता। ज्ञानी तो कहते हैं कि तू अपने में देख। तेरा परमेश्वर-आत्मा तुझमें ही है; यही तेरा निजपद है। ऐसे आत्मा की पहिचानकर धर्मी जीव आतमराम हुआ; आत्मा ही उसका विश्रामधाम है, उसका अनुभव करके उसमें एकाग्र हुआ। जिसप्रकार प्रकाश में गिरी हुई सुई को अंधकार में खोजे तो प्राप्त नहीं होती; जहाँ है, वहाँ खोजे तो मिलती है; न हो, वहाँ खोजने से नहीं मिलती। इसीप्रकार आत्मा को अज्ञानी जीव राग तथा शरीर में खोजते हैं; आत्मा तो ज्ञान के प्रकाश में है; उसे प्रकाश में खोजने के बदले राग के अन्धकार में अथवा जड़ के अंधकार में खोजे तो कहाँ से प्राप्त होगा ? आत्मा जहाँ हो, वहाँ खोजे तो प्राप्त होगा; किंतु जहाँ नहीं है, वहाँ खोजे तो कहाँ से प्राप्त होगा ?

शरीर के अंदर जाननेवाला आत्मा है, उसकी पहिचान करना चाहिये। यह शरीर तो धूल-रजकणों का बना हुआ है, यह आत्मा का बना हुआ नहीं है। आत्मा कैसा है ? तो कहते हैं:—

'शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।'

भाई, सुख का धाम तो आत्मा है। यह शरीर तो जड़ की भूमि है; जड़ की भूमि में अथवा राग की भूमि में सुख की पैदावार कभी नहीं होती, सुख तो आत्मा की चैतन्य-भूमि में उत्पन्न होता है, उसमें सुख भरा है। ऐसे आत्मा को धर्मी ने अनुभव में लिया है। छोटे-छोटे बालकों को भी इसका ज्ञान करना चाहिये, क्योंकि आत्महित के लिये यही सच्ची विद्या है।

आत्मा का चक्षु तो ज्ञान है, वह ज्ञान सभी को जानता है, किंतु अन्य का कार्य किंचित् नहीं करता। ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं अपने को भी स्वानुभव के द्वारा प्रत्यक्ष जानता है—ऐसा ज्ञान करना, वह मोक्ष का अर्थात् सुख का मार्ग है।

पर्यूषण के प्रवचनों से

पर्यूषण के प्रवचनों से स्वानुभूतिसूचक दोहन यहाँ दिया जाता है।
जिज्ञासुओं को यह अत्यंत मननीय है।

[समयसार नाटक : सर्वविशुद्धज्ञान द्वार 124-125-126]

आत्मा की अनुभूति वचनातीत है, मोक्षमार्ग का उसमें समावेश है।

ज्ञानी और अज्ञानी को बाह्य में मुनिवेश एक-सा दिखाई दे, तथापि दोनों की अंतरंग परिणति में बड़ी भिन्नता है। ज्ञानी को स्व-पर की भिन्नता की प्रतीति द्वारा अंतर में सम्यग्ज्ञान-किरण का प्रकाश प्रगट हुआ है; वह अपनी ज्ञान-किरणों से देहादि की क्रिया को अत्यंत भिन्न जानता है। देह की दशा को आत्मा की नहीं मानता। ज्ञानी के अंतरंग में मोक्ष की किरण जागृत हुई है, शांतभाव का उदय हुआ है। उसके द्वारा वह मोक्षमार्ग के सन्मुख वर्त रहा है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ-अवस्था में हो और बाह्य में त्यागी भी न हो, मुनिदशा भी न हो, तथापि वह अपने को ज्ञानमय अनुभव करता हुआ मोक्षमार्ग के सन्मुख ही है।

अज्ञानी के अंतर में ज्ञान-किरण तो जागृत नहीं हुई है, अज्ञानवश उसका हृदय अन्ध है, इसलिये वह बंधनभाव को ही करता है तथा अपने को देह की दशारूप अनुभव करता है। देह से तथा बंधभावों से भिन्न अपने चिदानंदतत्त्व को वह नहीं पहिचानता। बाह्य चारित्र तथा शुभराग हो, उसे ही अपना स्वरूप मानता है, उसे मोक्ष का साधन मानता है, लेकिन अपने सच्चे स्वरूप को और मोक्ष के सच्चे कारण को वह जानता नहीं। अहा, मोक्ष का मार्ग तो अंतर में आत्म-अनुभूति ही है! ऐसी आत्म-अनुभूति हुई, वह वचनातीत है, वही समयसार है, उससे उत्कृष्ट अन्य कोई नहीं। अहा, अधिक क्या कहें? अनुभूति वचन में नहीं आती, अतः वचन-विकल्पों से बस हो! वे सब तो दुर्विकल्प हैं। आत्मा के परमार्थ का समावेश तो स्वानुभव में ही होता है; इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि—

अरे, जिनवचन का विस्तार तो अगाध एवं अपार है, वह वाणी द्वारा तो कितना कहा जाये? जितना अनुभव में आता है, उतना वचन में नहीं आता। स्वानुभवगम्य वस्तु का पार वचन-विकल्प से कैसे आये? इसलिये वचन-विकल्प से रहित होकर हम तो स्वानुभव में ही रहना चाहते हैं। आत्मा के शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघनस्वरूप का वर्णन करके अंत में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—

निश्चय सर्वे ज्ञानीनो आवी अत्र समाय;
धरी मौनता अेम कही, सहज समाधिमांय॥

अधिक बोलने से, अधिक विकल्पों से कहीं इष्टसिद्धि नहीं है; अतः चुप रहना ही अच्छा है। अर्थात् अंतर में विकल्पों से रहित होने का अभ्यास करके स्वानुभव करने का ही तात्पर्य है। सम्यग्दर्शन प्रगट करने में भी प्रथम आत्मा का अनुभव है; वह अनुभव हो, तभी सम्यग्दर्शन होता है। वचन द्वारा या विकल्पों द्वारा आत्मा का पार नहीं पाया जा सकता।

अधिक बोलने से क्या इष्ट है? इसलिये चुप रहना ही अच्छा है, जितना प्रयोजन हो, उतना ही उत्तम वचन बोलना। शास्त्रों के अभ्यास में भी जो विकल्प हैं, उनसे भी कार्यसिद्धि नहीं होती। अतः वचन का प्रलाप और विकल्पजाल छोड़कर, विकल्प से पृथक् ज्ञानचेतना द्वारा शुद्ध परमात्मा के अनुभव का अभ्यास करना ही इष्ट है, वही मोक्ष का मार्ग है, वही परमार्थ है। आत्मा का जितना अनुभव है, उतना ही परमार्थ है; अन्य कोई परमार्थ अर्थात् मोक्ष का कारण नहीं।

शुद्धातम-अनुभव क्रिया, शुद्ध-ज्ञान-दृग दौर;
मुक्तिपंथ साधन यहै, वागजाल सब और॥

शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो क्रिया है, वह शुद्ध ज्ञान-दर्शन तथा चारित्र है, वही मोक्षपंथ है, वही मोक्ष का साधन है। इसके अतिरिक्त सब विकल्पजाल है। जिसे ऐसे आत्मा का अनुभव करना आया, उसे सब आ गया।

अरे, तिर्यंचादिक जीवों को शास्त्रज्ञान न होने पर भी अंतर के वेदन में राग और आत्मा के चैतन्य-स्वाद की भिन्नता जानकर 'यह मेरा आत्मा ही आनंदस्वरूप है'—ऐसा अंतर में वेदन किया, उसमें समस्त शास्त्रों का सार आ गया; उसमें मोक्षमार्ग आ गया। ऐसा आत्मा अनुभव में आया, वह स्वयं आनंदमय जगत्चक्षु है।—ऐसे आत्म-अनुभव में ही मोक्षमार्ग का समावेश होता है। ऐसे आत्मा का अनुभव हम करते हैं, तुम भी करो!●●

योगियों को गोचर ऐसा सहज चैतन्यतत्त्व

[अपने इस अद्भुत तत्त्व को मैं अति अपूर्व रीति से भाता हूँ।]

[नियमसार श्लोक 155, 156, 157]

परम पुरुष ऐसा चैतन्यमूर्ति आत्मा कैसा है ?—वह मन और वचन के मार्ग से दूर है, मन-वचन से अगोचर है, परंतु वह ज्ञानज्योति द्वारा धर्मात्माओं के चित्त में स्पष्ट है। धर्मात्मा मन-वचन से पार होकर स्पष्ट स्वसंवेदन से उसका अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति में विधि-निषेध के कोई विकल्प नहीं हैं, क्योंकि वहाँ ग्रहण करने योग्य ऐसे शुद्धतत्त्व का साक्षात् ग्रहण है और निषेधरूप समस्त परभावों का अभाव ही है।

धर्मात्मा अपनी अनुभूति द्वारा सहज चैतन्यतत्त्व को अपने में अनुभव करता है। कोई भी इन्द्रिय-जनित कोलाहल उसमें नहीं, वह परम शांत है। सहज तत्त्व कोलाहल रहित है, क्योंकि वह इन्द्रियों से पार है। नय के विकल्पों से दूर होने पर भी वह कहीं अगोचर नहीं है, उपयोग को अंतर में लगानेवाले योगियों को वह प्रत्यक्षगोचर है।

अंतर्मुख उपयोगस्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान में सहजतत्त्व साक्षात् प्रतीत होता है—अनुभव में आता है। मन से तथा कोलाहल से दूर होने पर भी धर्मी की स्वसन्मुख पर्याय में वह समीप है, दूर नहीं। ऐसा तत्त्व ही जगत में उत्कृष्ट है, वह निज अनुभूति की समृद्धि से सुशोभित है। मेरे सम्यग्दर्शनादि भावों में मेरा आत्मा ही अभेद है, इसलिये वही समीप है और परभावों के कोलाहल उसमें नहीं हैं, उनसे वह दूर है, पृथक् है।

अज्ञानी जीवों की अनुभूति में रागादि परभाव ही दिखते हैं, इसलिये उन्हें परभाव निकट प्रतीत होते हैं तथा सहज चैतन्यतत्त्व दूर लगता है। ज्ञानी को स्वानुभूति में अपना परम तत्त्व समीप है और परभाव दूर हैं। अहो! सम्यग्दृष्टि को अपना आत्मा गम्य है, अपने में ही अनुभवगोचर है, पास में है। अज्ञानी इन्द्रिय-मन से तथा संकल्प-विकल्प के कोलाहल से

पृथक् नहीं होता, इसलिये उसे परम तत्त्व दूर है। चैतन्यतत्त्व शुभ के विकल्प से दूर हैं, चैतन्यज्योति राग से भिन्न प्रकाशमान है, उसी में आत्मा है। चैतन्यदीप के निकट ही आत्मा का घर है, अर्थात् वही आत्मा है।

लोक में कहावत है कि—'मामा का घर कितनी दूर?... दिया जले उतनी दूर।' उसीप्रकार 'आत्मा का घर कितनी दूर?' तो कहते हैं कि 'दिया जले उतनी दूर...' अर्थात् चैतन्य की ज्योति जहाँ जगमगाती है, वही आत्मा का घर है। आत्मा स्वानुभवरूपी चैतन्यदीप द्वारा प्रत्यक्षगोचर होता है। ऐसा निर्दोष सहज चैतन्यतत्त्व अत्यंत जयवंत है।

यह चैतन्यतत्त्व अपने सुखरूपी सुधासागर में सदा लीन है। आत्मा में सुख का समुद्र सदा भरपूर है, जिसकी ओर दृष्टि करते ही अपने में अपूर्व सम्यक्त्व का अमृतसागर प्रगट होता है तथा मिथ्यात्व का विष उतर जाता है। परमगुरु द्वारा भव्यजीवों ने ऐसे शुद्ध आत्मा को जाना है और शाश्वत सुख का अनुभव किया है। अहो! सुख से भरे हुए अद्भुत सहज तत्त्व को मैं भी अति अपूर्व रीति से भाता हूँ। अपने तत्त्व का अनुभव करके उसी की निरंतर भावना करता हूँ।

अहा! जगत में ऐसे चैतन्यतत्त्व की भावना करनेवाले—अनुभव करनेवाले संत-धर्मात्मा श्रेष्ठ हैं। जगत की स्पृहा उन्हें नहीं है; इंद्र तथा चक्रवर्ती की विभूति का भी जिसके समक्ष कोई मूल्य नहीं; ऐसी चैतन्यविभूति उन्होंने प्राप्त कर ली है। धन आदि परग्रिह न होने पर भी वे वीतरागी संत कहीं निर्धन नहीं हैं, वे तो परमेष्ठी परमेश्वर भगवान हैं। चैतन्यतत्त्व से उत्कृष्ट वैभव इस जगत में दूसरा कोई नहीं है। ऐसे तत्त्व की भावनावाले सन्तों को हम प्रणाम करते हैं। तथा हम भी ऐसे सहज तत्त्व की भावना करते हैं, अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति, वह मार्ग है। उत्तम क्षमादि समस्त वीतरागी धर्मों का ऐसे अनुभव में समावेश है। उनमें कोई कोलाहल नहीं, कोई क्लेश नहीं; वही अभेद मुक्ति का माग है।—'निजभाव से भिन्न ऐसे समस्त विभाव को छोड़कर मैं एक निर्मल चैतन्यमात्र तत्त्व की ही भावना करता हूँ, उसके श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में एकाग्र होता हूँ। संसार-सागर से पार होने के लिये अभेद मुक्तिमार्ग को मैं नित्य नमन करता हूँ... अर्थात् चैतन्यभावना द्वारा मैं भी उसी मार्ग पर जाता हूँ।

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र):—पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातःकाल श्री नियमसारजी के परमसमाधि अधिकार पर तथा सायंकाल श्री नाटक समयसार के चतुर्दश गुणस्थानाधिकार पर भाववाही प्रवचन होते हैं। जिनमंदिरजी में पूजा तथा भक्ति का कार्यक्रम नियमितरूप से चलता है। बाहर से अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन आकर स्वामीजी के सत्समागम का लाभ लेते हैं। परमागम मंदिर के निर्माण का कार्य चल रहा है, जो अपने ढंग का विशाल एवं अद्वितीय होगा।

☆ ☆ ☆

भोपाल में पर्यूषण पर्व के अवसर पर

आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित खीमचंदजीभाई का शुभागमन

इस वर्ष भोपाल दिगम्बर जैन समाज के विशेष आग्रह पर सोनगढ़ निवासी सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री पंडित खीमचंदजीभाई पर्वराज पर्यूषण के पवित्र अवसर पर यहाँ पधारे। आपके अध्यात्म-प्रधान एवं आत्म-कल्याण प्रेरक प्रवचनों का समाज पर अभूतपर्व प्रभाव पड़ा और आत्महित की उत्कृष्ट अभिरुचि जागृत हुई। आपका प्रवचन प्रातः 9 से 10 श्री प्रवचनसारजी पर तथा रात्रि को 8 से 9 शंका-समाधान एवं 9 से 10 उत्तम क्षमा आदि दश धर्म एवं श्री समयसारजी पर प्रतिदिन होता था। आपके सभी प्रवचनों में लगभग 3 से 4 हजार की विशाल संख्या में समाज ठीक समय पर एकत्रित होकर धर्मलाभ प्राप्त करती थी। मध्याह्न 3 से 4 बजे तक क्लास का कार्यक्रम चलता था। इस क्लास में आपने जैन सिद्धांत प्रवेशिका के माध्यम से जैनतत्त्व के मूल आधारभूत सिद्धांत जैसे कर्ता-कर्म, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग, षट्कारक आदि महान विषयों का उनकी बहुत ही सरल परिभाषाओं तथा दृष्टांतों के द्वारा ज्ञान कराया। क्लास में प्रतिदिन नियमितरूप से लगभग 4-5 सौ भाई-बहिन भाग लेते थे।

इसके अतिरिक्त प्रात: 10 से 12 तक तत्त्वार्थसूत्रजी के एक-एक अध्याय पर प्रतिदिन पूज्य ब्रह्मचारी श्री राजारामजी के द्वारा अर्थसहित प्रवचन होता था तथा प्रतिदिन सायंकाल 7 से 8तक सामायिक पाठ आलोचना पाठ, छहढाला, मेरी भावना आदि का सामूहिक पाठ चलता था। चतुर्दशी के दिन मध्याह्न में घटयात्रा का विशाल जुलूस निकाला गया तथा श्रीजी के कलशाभिषेक का कार्यक्रम हुआ। कुंवार वदी एकम के दिन उत्तम क्षमा-दिवस समारोहपूर्वक मनाते हुए पर्वराज पर्यूषण पर्व का सानंद समापन हुआ।

विनीत—

दिगम्बर जैन पंचायत कमेटी, भोपाल (मध्यप्रदेश)

☆ ☆ ☆

रखियाल (गुजरात) में

जैनधर्म शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न

पिछले माह तारीख 17-9-71 से 28-9-71 तक रखियाल में जैनधर्म शिक्षण-शिविर का विशाल आयोजन श्री दिगम्बर जैन शिक्षण समिति गुजरात द्वारा किया गया। समारंभ का उद्घाटन माननीय श्री पंडित खीमंचद जे. सेठ की अध्यक्षता में श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री जयपुर द्वारा हुआ था। इस अवसर पर करीब बारह सौ की संख्या में स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। श्री जिनमंदिर में प्रतिदिन सामूहिक पूजा के उपरांत विशाल मंडप में निम्नानुसार कार्यक्रम चलते थे:—

प्रात: 7 से 8 बजे तक शिक्षण श्री पंडित गोविंददासजी खडेरी द्वारा

(बालबोध पाठमाला, भाग-1)

प्रात: 8 से 9 बजे तक प्रवचन श्री पंडित खीमंचदभाई द्वारा

(श्री समयसार कलश-10)

प्रात: 9 से 10 बजे तक शिक्षण श्री मोक्षमार्गप्रकाशक पर श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री द्वारा तथा श्री जैनसिद्धांत प्रवेशिका पर श्री पंडित चिमनलाल ताराचंद कामदार द्वारा

बालबोध पाठमाला भाग – 1 श्री विमलचंद झांझरी, उज्जैन

बालबोध पाठमाला भाग–2 श्री जतीशचंद जैन, सनावद

बालबोध पाठमाला भाग–3 श्री केसरीमल बंडी इंदौर द्वारा

दोपहर 3 से 4 बजे तक श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री द्वारा प्रवचन

(श्री समयसार, गाथा 73)

4 से 5 बजे तक शिक्षण श्री पंडित खीमचंदभाई द्वारा द्रव्यसंग्रह पर तथा

श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार द्वारा छहढाला पर

रात्रि को 7 से 9 बजे तक श्री पंडित खीमंचदभाई का प्रवचन

(श्री प्रवचनसार गाथा 200 पर)

रात्रि को 8से 9 बजे तक बालबोध पाठमाला की कक्षाएँ प्रात:काल की भाँति लगती थीं।

शिक्षण शिविर में 53 ग्रामों के करीब 800 शिक्षार्थियों ने भाग लिया। प्रथम दिन की उपस्थिति करीब 1300 की थी।

बालबोध पाठमाला की परीक्षा में 499 शिक्षार्थी बैठे थे; परिणाम शत–प्रतिशत रहा। अंतिम दिन री डाह्याभाई सी. महेता चीफ जज की अध्यक्षता में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण शिक्षार्थियों को पारितोषक रूप में पुस्तकें वितरित की गई थीं। प्रान्तिज के माननीय सिविल जज मुख्य अतिथि के रूप में पधारे थे। श्री पंडित खीमंचदभाई तथा श्री पंडित हुकमचंदजी के प्रवचनों से वे अत्यंत प्रभावित हुए और कहा कि मैं हिन्दू धर्मी होकर भी मैंने तत्त्व–संबंधी ऐसी श्रेष्ठ बात अब तक नहीं सुनी थी। अब मैं अगले वर्ष प्रांतिज में होनेवाले शिक्षण–शिविर में अवश्य आप लोगों के प्रवचनों का लाभ लूँगा। इस शिक्षण शिविर में आनेवाले शिक्षार्थियों में से 60 से अधिक भाई–बहिनों ने नियमित स्वाध्याय करने की तथा पाठशाला में जाकर धार्मिक शिक्षा लेने की भावना वयक्त की थी। शिक्षण–शिविर से प्रभावित होकर गुजरात में करीब 20 नगरों में स्थानीय मुमुक्षुओं द्वारा वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ खोलने का निर्णय किया है। जिनके नाम इसप्रकार हैं:—

फतेपुर, महावीरनगर, तलोद, रामपुरा, रणाण, साबली, चोरीवाड, मुनई, बडोली, उजेडिया, अहमदाबाद, दहेगाम, झींझवा, जांबुडी, सोनासण, पाटनाकुवा, रखियाल, खानपुर, वासणा।

श्री दिगम्बर जैन शिक्षण समिति गुजरात ने अहमदाबाद में वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड केन्द्र की स्थापना की है, जिसका संचालन श्री चेतनभाई करेंगे। यह केन्द्र वीतराग विज्ञान परीक्षा बोर्ड जयपुर के अंतर्गत गुजरात में कार्य करेगा।

अगले वर्ष प्रांतिज में जैनधर्म शिक्षण शिविर खोलने के लिये श्री मीठालालजी गाँधी ने 10001) दस हजार एक रुपये देने की घोषणा की है। तदुपरांत 12 दिन तक भोजनादि व्यवस्था के लिये भी विभिन्न व्यक्तियों ने अपनी स्वीकृति दे दी है। शिक्षण शिविर में आनेवाले शिक्षार्थियों के लिये गद्दे तथा रजाइयों के लिये 7500) रुपये एकत्र हुए। अगले वर्ष प्रान्तिज में होनेवाले शिविर में आनेवालों की संख्या करीब दो हजार होने की संभावना है। श्री पंडित खीमचंदभाई तथा श्री पंडित हुकमचंदजी के प्रवचन रखियाल हाईस्कूल में भी हुए थे। जिससे विद्यार्थियों में वीतराग विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हुई।

गुजरात में पाँच वर्ष तक शिक्षण-शिविर चलाने की जो योजना बनाई गई थी, वह अब मुमुक्षुओं की रुचि देखकर 10 वर्ष तक बढ़ाने का निर्णय किया गया है। इसप्रकार यह शिविर बड़े ही हर्षोल्लास के वातावरण में समाप्त हुआ, सबने पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रति आभार प्रदर्शित किया।

बाबूभाई चुनीलाल महेता
फतेपुर (गुजरात)

लोहरदा (म.प्र.):—पर्यूषण पर्व के अवसर पर हमारे यहाँ श्री छोटे बाबूभाई फतेपुरवालों को भेजकर बड़ा उपकार किया है। श्री बाबूभाई द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार व दशलक्षण धर्म पर आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। आपके द्वारा जैनधर्म की अलौकिक बात सुनकर सब आत्मविभोर हो जाते थे। आपकी तत्त्व को समझाने की शली अलौकिक थी, अजैनों ने भी आकर लाभ उठाया।

कुंवारवदी 2 सं. 2028 सुबह की बेला में वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन हुआ, उसमें 35 छात्र-छात्राएँ लाभ लेते हैं।

इसके बाद कुंवारवदी 5 को श्री सुजामलजी मोदी को महिदपुर से लाये। आपके द्वारा आत्मा के अनंत गुणों की व्याख्या एवं आध्यात्मिक प्रवचन समयसार गाथा 144 पर होते थे; सब समाज आत्मा के वैभव को सुनकर आत्मविभोर हो जाती थी। सबने अपूर्व लाभ उठाया।

छगनलाल जैन
मंत्री - मुमुक्षु मंडल, लोहारदा

☆ ☆ ☆

वाशिम (आकोला):—श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी देऊलगाँव राजा से हिंगोली होकर वाशिम पधारे। आपका कार्यक्रम करीब 4-5 दिन तक चला। पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों के टेप-रिकार्ड तथा अन्य कार्यक्रमों से अच्छी प्रभावना हुई।

शहपुरा (मिटौनी):—यहाँ श्री पंडित अभयकुमारजी के सान्निध्य में पर्यूषणपर्व उल्लासपूर्वक मनाया गया। दस दिन तक आध्यात्मिक वातावरण रहा। पंडितजी के प्रयत्न से यहाँ श्री वीतरागविज्ञान पाठशाला की स्थापना हो चुकी है। नवीन शिक्षा-पद्धति का कार्यक्रम श्री वीतरलालजी तथा श्री शीतलचंदजी द्वारा लगनपूर्वक चलाया जाता है। शास्त्रसभा एवं स्वाध्याय का कार्यक्रम भी नियमितरूप से चलता है। मुमुक्षुमंडल की स्थापना हो चुकी है। पूज्य स्वामीजी का बड़ा उपकार है।

—डा. रतनचंद जैन

जसवंतनगर (उ.प्र.):—श्री ब्रह्मचारी पंडित रमेशचंदजी इटावा से पधारे, उनके द्वारा आत्मकल्याण का सदुपदेश सुनकर मुमुक्षुगण अत्यंत संतुष्ट हुए। प्रातःकाल 7 से 8 बजे तक टेपरिकार्ड, दोपहर को 3 से 4 बजे तक तत्त्वचर्चा और रात्रि को 8 से 9 बजे तक श्री मोक्षमार्गप्रकाशक तथा छहढाला पर आपके प्रवचन होते थे। आपके समझाने का ढंग बड़ा ही सरल और सुंदर है। सबने खूब लाभ उठाया। यहाँ से ब्रह्मचारीजी ने करहल के लिये प्रस्थान किया। पूज्य स्वामीजी को हमारा वंदन।

—सुदर्शनलाल जैन

☆ ☆ ☆

करहल (इटावा-उ.प्र.):—पंडित ब्रह्मचारी श्री रमेशचंदजी 19-9-1971 को जसवंतनगर से हमारे यहाँ पधारे। पंडितजी ने नित्य दो बार प्रवचन किये और सोनगढ़ के आध्यात्मिक संत श्री कानजीस्वामी के समयसार ग्रंथराज पर किये गये प्रवचनों के टेपरिकार्ड

भी सुनाये। बड़ा आनंद रहा और समाज ने खूब लाभ लिया।

पंडित ब्रह्मचारीजी प्रातः समयसार तथा रात्रि को मोक्षमार्गप्रकाशक पर अपने प्रवचन करते थे। पंडित ब्रह्मचारीजी बड़े सरल स्वभावी विद्वान हैं। समाज अपनी मिथ्यात संबंधी भूल निकालकर अपने आत्मस्वभाव का श्रद्धान-ज्ञान और आचरण करे यही ब्रह्मचारीजी का उपदेशों का सार रहा।

पंडितजी ने यहाँ स्वाध्याय मंडल स्थापित कराया, जिसमें प्रारंभ से सभी मुमुक्षुओं को छहढाला से पढ़ाई प्रारंभ करने की प्रेरणा दी। यहाँ समाज पंडितजी जैसे विद्वान पुरुष का समागम पाकर सोनगढ़ स्वाध्यायमंदिर की व्यवस्था का तथा पूज्य स्वामीजी का आभार मानती है।

—रमेशचंद्र सिंघई

मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल की प्रगति के समाचार

मध्यप्रदेश मंडल के द्वारा माह अगस्त व सितंबर में काफी प्रगति हुई है; जिसके संक्षिप्त समाचार हम दे रहे हैं:—

खनियाधानाः—दिनांक 22-8-71 से 24-8-71 तक पंडित ज्ञानचंद जैन विदिशा के द्वारा समाज में तत्त्व की विशेष जागृति हुई, जिसके फलरूप दिनांक 26-9-71 से 5-10-71 तक अनेक विद्वानों के द्वारा विशालरूप में शिक्षण-शिविर चल रहा है, जिसमें अनादि अज्ञानता दूर होने का मौका बन गया है। खनियाधाना समाज पूज्य स्वामीजी का बहुत उपकार मानती है।

विदिशाः—विदिशा स्टेशन पर इस वर्ष श्री कनुभाई व किला अंदर श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठावालों के पधारने से गत वर्षों के मुकाबले पर्यूषण पर्व में अलौकिकरूप से धर्म-प्रभावना हुई है। आपने प्रतिदिन 8 घण्टा अपना समय देकर समाज में ज्ञान-वैराग्यता की नई चेतना उत्पन्न की और नवयुवकों का बहुत ही उत्साह बढ़ाया है।

पर्यूषण के बाद ही एक दिन श्री पंडित जगन्मोहनलालजी कटनी तथा उसके पश्चात् एक दिन के लिये श्री पंडित हिम्मतभाई बम्बईवालों ने ललितपुर से जाते समय विदिशा रुककर धर्मलाभ दिया।

दिनांक 9 सितम्बर को विदिशा समाज की ओर से एक विशाल रथयात्रा का आयोजन

किया गया, जिसमें बाहर से अनेक मुमुक्षुओं ने पधारकर रथयात्रा में प्रभावना कर शोभा बढ़ाई, रात्रि को प्रवचन के बाद श्री प्रदीपकुमार गंधर्व द्वारा भक्ति का विशेष प्रोग्राम हुआ।

बासौदा:—दिनांक 13-9-71 को बासौदा में विशाल रथयात्रा निकलने के सिलसिले में पंडित श्री ज्ञानचंद जैन विदिशा ने पहुँचकर धर्म के यथार्थ स्वरूप का उपदेश दिया। एक शिक्षण शिविर करने का विचार हो रहा है।

ललितपुर:—दिनांक 18-9-71 को ललितपुर स्टेशन के मंदिर में दो दिन का विशेष प्रोग्राम रखा गया था, जिसमें श्री पंडित ज्ञानचंद जैन विदिशा ने पहुँचकर मुमुक्षुओं को अमृतरूप वैराग्यरस पिलाया, जिसे श्रवण करने के लिये शहर से हजारों की संख्या में नर-नारी एकत्रित हुये, दिनांक 19-9-71 को विशेष सन्मान के साथ श्री पंडित ज्ञानचंद जैन को अभिनंदन-पत्र समाज की ओर से देकर पूज्य स्वामीजी का आभार माना तथा उसी समय एक भाई के सहज भाई हुये और कार्तिक की अष्टाह्निका में विधान के साथ 8दिन का शिक्षण-शिविर लगाने को तैयार हो गये; जिसकी तैयारियाँ प्रारंभ हो गई हैं।

मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल पूज्य कानजीस्वामी का अति आभार मानता है कि उनके द्वारा बताये हुये सच्चे मार्ग पर चलकर आज सारे भारत में लोग अपने आत्मकार्य में जागने लग गये हैं।

—ज्ञानचंद जैन

प्रचार मंत्री—मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल, केन्द्र विदिशा

☆ ☆ ☆

गुना (म.प्र.):—दाहोद निवासी श्री नाथालालजी एवं मणिभाई मुनइ (गुजरात) वाले दसलक्षण पर्व पर यहाँ पधारे थे। 25 दिन तक प्रवचन, शंका-समाधान, जैनधर्म शिक्षा पद्धति द्वारा हम सबको अनुपम आनंद प्रदान किया। और श्री शांतिनाथ भगवान के तीर्थक्षेत्र श्री बजरंगगढ़ में चित्रों का अवलोकन करके एक चित्र के लिये दानस्वरूप 501) रुपये दे गये हैं। यह है गुरुदेवश्री की ज्ञानकला और सच्चा व्यवहार, जो सोनगढ़ का व्यवहार कहलाता है! हम सभी पूज्य स्वामीजी का एवं सोनगढ़ प्रचार-समिति का भी आभार मानते हैं।

— केवलचंद पांडे

☆ ☆ ☆

मौ (भिंड में) वीतराग विज्ञान का शिक्षण-शिविर

यहाँ दिनांक 3-10-71 से 14-10-71 तक पूज्य ब्रह्मचारी राजारामजी के तत्त्वावधान में शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें पंडित अभयकुमारजी एम.ए., बी.एड., श्री शांतिकुमारजी, एवं श्रीमती भागवतीदेवी ने कक्षाएँ लीं। शिक्षण में श्री लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला, द्रव्यसंग्रह एवं मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय का समावेश किया गया था। प्रतिदिन पूजन-भक्ति के उपरांत श्री ब्रह्मचारी राजारामजी के प्रवचन एवं शंका-समाधान का भी कार्यक्रम रखा गया था।

—श्री दिगम्बर जैन समाज एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, मौ (भिंड)

☆ ☆ ☆

दाहोद (गुजरात):—दाहोद दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण पर पर्यूषण पर्व में श्री भाई सुशीलकुमारजी राघौगढ़वाले पधारे थे। उनके आध्यात्मिक प्रवनों से समाज अत्यंत प्रभावित हुआ। प्रतिदिन चार बार आपके प्रवचनादि का कार्यक्रम चलता था। श्री समयसारजी शास्त्र, श्री समयसार नाटक, श्री मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन होते थे तथा शिक्षण कक्षाएँ भी चलती थीं। आपने बालकों में तत्त्व समझने के प्रति अच्छी रुचि जागृत की है। हम पूज्य गुरुदेव का तथा सोनगढ़ की संस्था के व्यवस्थापकों का हार्दिक आभार मानते हैं। पूज्य स्वामीजी के प्रताप से जैनधर्म की बड़ी प्रभावना हो रही है। —जवाहरलाल पन्नालाल

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, दाहोद

नया प्रकाशन

सत्तास्वरूप (पंडित स्व. भागचंद्रजी कृत) जिसमें पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी की प्रस्तावना एवं श्री पंडित गुमानीरामजी कृत समाधिमरण को भी सम्मिलित किया गया है—छपकर तैयार है। कुल 2000 दो हजार प्रतियाँ छपाई गई हैं, जिनमें 1500 प्रतियों के ग्राहक तो पहले ही बन चुके थे। अब केवल 500 प्रतियाँ ही शेष हैं। पुस्तक का प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल सनावद (म.प्र.) द्वारा किया गया है। अनुवाद श्री जतीशचंद्र जैन; डेमी साइज, पृष्ठ 120, मूल्य मात्र 1), पोस्टेज अलग।

प्राप्तिस्थान :— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सागर (म.प्र.) में जैनधर्म शिक्षण-शिविर का आयोजन

श्रीमान् सेठ भगवानदास शोभालाजी एवं स्थानीय मुमुक्षु मंडल द्वारा दिनांक 14-11-71 से 28-11-71 तक जैनधर्म शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया है। लाभ लेने के इच्छुक सज्जन अपने आगमन की सूचना निम्न पते पर अवश्य देवें।

सेठ भगवानदास शोभालाल
चमेली चौक, सागर (म.प्र.)

☆ ☆ ☆

श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर द्वारा प्रकाशित श्री बालबोध पाठमाला (भाग 1-2-3) तथा श्री वीतराग विज्ञान पाठमाला (भाग 1-3) गुजराती भाषा में छपकर तैयार हो गये हैं। वीतराग विज्ञान पाठमाला का दूसरा भाग भी छप रहा है। जो शीघ्र ही तैयार होगा। एक साथ 25 पच्चीस रुपये से अधिक की पुस्तकें खरीदनेवालों को 20% बीस प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

मिलने का पता:—

1- श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.)

2- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पुस्तक-विक्रय-विभाग की ओर से सूचना

हमारी संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकें मँगवानेवाले पुस्तक-विक्रेताओं, मुमुक्षु मंडलों एवं व्यक्तिगत पुस्तकें खरीदनेवालों को पोस्टेज-पेकिंग तथा रेलवे खर्च में राहत देने के लिये तथा प्रचार हेतु हिन्दी एवं गुजराती के समस्त प्रकाशनों पर 50 पचास रुपये मूल्य की या अधिक की पुस्तकें एकसाथ खरीदनेवालों को 10% दस प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

बाहर से पुस्तकें मँगनवानेवालों को पोस्टेज-पेकिंग तथा रेलवे खर्च में राहत देने हेतु ही योजना बनायी गई है, इसलिये हमारे विक्रय-विभाग से रूबरू पुस्तकें खरीदनेवालों को यह कमीशन-योजना लागू नहीं होगी। प्रेषक—

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पुस्तक प्रकाशन संबंधी

विज्ञप्ति

निम्नोक्त ग्रंथ छपवाने का निर्णय किया गया है। पुस्तकें छपते ही तुरंत बिक जाती हैं; अत: जिन भाइयों को जिन-जिन पुस्तकों की आवश्यकता हो, वे अपने पूरे पते सहित आर्डर बुक करा देवें।

(1) मोक्षशास्त्र : (सूत्रजी) बहुत बड़ी संग्रहात्मक टीका।

(2) समयसारजी : बन्ध अधिकार प्रवचन : (भाग 5 वाँ)

(3) आत्मवैभव : (जिसमें समयसारजी की 47 शक्तियों पर विस्तृत प्रवचन है)

(4) 'नय प्रज्ञापन' : (जिसमें प्रवचनसारजी शास्त्र के 47 नयों पर विस्तार से प्रवचन हैं)

(5) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय : (श्री अमृतचंद्राचार्य कृत ग्रंथ पर पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी की भाषा टीका)

(6) ज्ञानचक्षु : (समयसार गाथा 320 श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका पर पूज्य स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

(7) समयसार नाटक : (दूसरी आवृत्ति)

(8) छहढाला : (सचित्र-सटीक)

(9) छहढाला : (मूलमात्र)

— छपकर तैयार हैं —

* श्री समयसार प्रवचन (भाग-1) : (श्री समयसारजी की गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) पृष्ठ 480, मूल्य 4.50

* श्री दशलक्षण धर्म : (श्री पद्मनंदि पंचविंशतिका में से दस धर्मों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

पृष्ठ 104, मूल्य 0.75 पैसे

* अध्यात्मवाणी : (स्व. ब्रह्मचारी दुलीचंदजी कृत) पृष्ठ 105, मूल्य 0.85

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
पोस्ट- सोनगढ़ (सौराष्ट्र) जिला-भावनगर

अहो, आत्मानुभूति!

सम्यक्त्वभावरूप परिणमित हुआ मैं जानता हूँ कि मेरे सम्यक्त्वादि में मैं हूँ, मेरा आत्मा ही सम्यक्त्वरूप है।

'आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते ये'।

मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र में मेरा आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं,
मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र में मैं ही हूँ, उससे बाहर मैं नहीं हूँ।

—ऐसी जिसे अनुभूति है, वही जीव धर्मी है। उसके सम्यक्त्वादि समस्त भावों में आत्मा ही उपादेय है। सम्यक्त्वादि में आत्मा ही निकट है, और परभाव दूर हैं—बाहर हैं।

विकल्प मेरे सम्यक्त्व-ज्ञानादि में निकट नहीं किंतु दूर हैं। मेरा परम आत्मा ही मेरे सम्यक्त्व-ज्ञानादि में निकट है, किंचित् दूर नहीं।

— इसप्रकार सर्वत्र अपना आत्मा ही उपादेय है। ज्ञानी जानता है कि मैं सहज शुद्ध ज्ञानचेतनारूप परिणमित हूँ और अपनी इस चेतना में मैं ही तन्मय हैं।

वाह, आत्म-अनुभूति!

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं
अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-४)	4.00
8	मुक्ति का मार्ग	0.50
9	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
	'' '' '' भाग-3	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी	0.25
12	समयसार पद्यानुवाद	0.25
13	द्रव्यसंग्रह	0.85
14	छहढाला (सचित्र)	1.00
15	अध्यात्म-संदेश	1.50
16	नियमसार (हरिगीत)	0.25
17	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
18	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
19	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	1.50
20	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
21	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	1.00
22	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
23	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
24	बालबोध पाठमाला, भाग-३	0.55
25	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
26	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.65
27	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.65
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
28	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	0.25
29	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
30	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
	'' '' (भाग-2)	8.00
31	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
32	मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय	0.50
33	जैन बालपोथी भाग-2	0.40
34	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	4.50
35	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
36	दशलक्षण धर्म	0.75
37	शब्द-कोष	0.20
38	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)